वादि वेताल—

श्री शान्तिसूरीश्वरजी महाराज-विरचित

जीवविचार प्रकरण

सार्थ-सविवेचन

संपादक तथा

अर्थ विवेचन आदि कर्त्ता

व्याख्यान दिवाकर, विद्याभूषण

पं० हीरालाल [दूगड] जैन (स्नातक)

[गुजरानवाला-पंजाब निवासी]

वर्तमान—मद्रास

[सर्वाधिकार लेखक द्वारा सुरक्षित]

प्रकाशक

श्री जैन मार्ग प्रभावक सभा

४१० (साहूकार पेठ) मिण्ट स्ट्रीट

मद्रास

मुद्रित.—

नवयुवक प्रेस

३, कमर्सियल बिल्डिग (नेताजी सुभाष रोड) कलकत्ता।

पुस्तक प्राप्ति स्थान

१—पं० हीरालाल [दूगड़] जैन

१२५, नायनी अप्पा नायक स्ट्रीट पी० टी० मद्रास

२—जैन मार्ग प्रभावक सभा

४१०, मिण्ट स्ट्रीट-मद्रास

३—श्री आत्मानन्द जैन पुस्तक प्रचारक मंडल

रोशन मोहल्ला आगरा

मूल्य रु० १—८—०

प्रथम संस्करण ४००० विक्रम संवत् २००६

लेखक—

हिन्दी भाषा जीव विचार के

व्याख्यान दिवाकर विद्या भूषण

प० हीरालाल (दूगड़) जैन [स्नातक]

समर्पण

जिसने जन्म दिया किन्तु आयुष्य कर्म के अभाव मे जिसे अपने नवजात नवदिन के रोते बिलखते और सिसकिया लेते एक मात्र शिशु को विवश होकर असहाय छोडना पडा। उस प्रात स्मरणीया, परम पूज्या, साक्षात् लक्ष्मी स्वरूपा माता "श्रीमती धनदेवीजी"

तथा उसकी छोटी बहिन—द्वितीय माता जिसने बडे लाड प्यार से इस शिशुका लालन पालन कर जीवन दान दिया वह भी उसके दस वर्ष बाद स्वर्ग सिधार गई—उस प्रात स्मरणीया, परम पूज्या माता "श्रीमती-भाइया देवीजी" (दोनो माताओ) की पुण्य स्मृतिमे सविनय सभक्ति सादर समर्पित

विनीत
हीरालाल

किञ्चित वक्तव्य

गुजरात काठियावाड़ प्रान्तों के सिवाय बाकी समस्त भारत वर्ष की जैन प्रजा प्रायः हिन्दी भाषा भाषी है इसलिये कई वर्षों से अनेक मित्रों का अति आग्रह था कि प्राथमिक अभ्यासियों के लिये जीवविचार प्रकरण का हिन्दी भाषानुवाद विवेचन सहित तैयार हो जाय तो विशेष लाभ होगा। उन मित्रों के आग्रह को लक्ष में रखते हुए मैंने जीवविचार का अनुवाद आज से कुछ वर्ष पूर्व ही प्रारम्भ कर दिया था किन्तु कुछ ऐसी परिस्थितियां बराबर बाधक बनकर सामने उपस्थित होती रहीं जिससे इस कार्य मे बिलम्ब होता गया। फिर भी लगभग इस का संपादन आज से डेढ़ वर्ष पूर्व हो चुका था किन्तु उस समय देश के विभाजन के कारण हमारा देश गुजरानवाला पश्चिमी पंजाब—भी पाकिस्तान में आ गया जिस से हमें अपना घरबार सब कुछ विवश हो कर छोड़ना पड़ा। वहां से आते समय अपने साथ एक दो टंकों के अतिरिक्त और कुछ न ला सके थे। इस प्रकार सब कुछ अपने निज आवास मे ही छूट जाने से जीवन यापन के लिये सब प्रकार की साधनविहीन अवस्था से अपनी गृहस्थी तथा बाल बच्चों के साथ नाना प्रकार की आपत्तियों के चक्कर में फंस जाना पड़ा। इन्हीं उलझनों में यह डेढ़ वर्ष भी निकल गया।

साथ में आये हुए ट्रंक मे पहनने के कपड़ों के साथ जीव-विचार की पाण्डु लिपि तथा कुछ दूसरे ग्रंथों की लिखित कापियाँ भी आ गई थीं सो यहां मद्रास आने पर फिर कुछ विद्यार्थियों और मित्रों ने जीवविचार को हिन्दी भाषा में तैयार कर प्रकाशित करने की प्रेरणा की। इन्हीं महानुभावों की प्रेरणा के फलस्वरूप जीवविचार के रहे हुए अपूर्ण कार्य को पूर्ण कर मैं आप महानुभावों की कुछ सेवा कर पाया हूं।

यह जीवविचार पाठशालाओं, बोर्डिङ्गों, स्कूलों, कालेजों तथा गुरुकुलों के विद्यार्थियों के एवं अन्य अभ्यास करने वाले संक्षेप रुचि तथा विस्तार रुचि वाले सब प्रकार के अभ्यासियों को उपकारी हो सके इस बात को लक्ष में रखते हुए इस का सम्पादन किया गया है।

इस जीवविचार में मूल गाथाएं अन्वय, शब्दार्थ, गाथार्थ संस्कृतछाया विवेचन, प्रश्नोत्तर, जीवों के मुख्य भेदों का विवरण, अनेक कोष्टक, स्थावरों में जीव सिद्धि मापों-संख्याओं और कालकी परिभाषाएं, मूल जीवविचारमें आये हुए पर्याय वाची शब्दों का कोष अर्थ सहित तथा हिन्दी पद्यानुवाद आदि अनेक उपयोगी विषय देकर इसे सुसज्जित किया गया है। साथ ही बाल जीवों को जीवविचार का ज्ञान प्राप्त करने मे विशेष सुगमता प्राप्त हो इस लिये अठारह चित्र भी दे दिये गये हैं। इस प्रकार इसको सर्वांग सुन्दर बनाने का प्रयत्न किया गया है।

जीवविचार मूल प्रकरण पर पाठक रत्नाकरजी कृत

बृहद्वृत्ति, एवं मुनि क्षमाकल्याणजी कृत लघु वृत्ति के आधार से इस ग्रंथ को तैयार किया है प्रातःस्मरणीय, पूज्यपाद विजयानन्दसूरि (आत्मारामजी) महाराज कृत नवतत्त्व, मेसाना से प्रकाशित जीवविचार आदि कई ग्रंथों का सहारा भी लेना पड़ा है इसलिये उन सबका मैं आभारी हूं।

इसको तैयार करते समय इस बात का विशेष लक्ष्य रखा गया है कि किसी प्रकारकी स्खलना न हो फिर भी कोई खास भूलें रह गई हों अथवा अन्यथा लिखा गया हो तो मिच्छामि दुक्कडं (क्षमायाचना) करते हुए बस करता हूं तथा पाठक महानुभावों से सविनय निवेदन करता हूं कि वे रह गई त्रुटियों के लिये सूचित करें जिससे इसके दूसरे संस्करण में ऐसी त्रुटियों का सुधार हो सके।

इस कार्य में मैं कहां तक सफल हुआ हूं और इसके अभ्यासियों के लिये यह कहां तक उपयोगी सिद्ध होगा इस बात का निर्णय पाठक ही कर सकते हैं।

इस पुस्तक के प्रूफ संशोधन तथा शुद्धि अशुद्धि पत्रक तैयार करने में एवं भूमिका लिख कर श्रीयुक्त अगरचन्द्रजी सा० नाहटा तथा भंवरलालजी सा० नाहटा ने इस कार्य में सहयोग दिया है इसके लिये मैं उनका आभारी हूं।

१२५ नायनी अप्पा नायक स्ट्रीट
पो० टी मद्रास

हीरालाल दूगड़
मिति माघ सुदि पचमी स० २००५

भूमिका

समस्त विश्व-प्रपञ्च जड़ और चेतन दो द्रव्यों का खेल है, दोनों में से किसी एक द्रव्य का अभाव हो तो विश्व की व्यवस्था चल नहीं सकती। भिन्न भिन्न दर्शनों में द्रव्यों की संख्या स्वमतानुसार न्यूनाधिक बतलायी है पर उन सब का समावेश इन दो द्रव्यों में ही हो जाता है। जैन धर्म मे भी द्रव्यों की संख्या ६ बतलाई है पर उनमे मूल द्रव्य ये दो ही हैं। जीव के अतिरिक्त धर्मास्तिकायादि पांचों का समावश जड़ मे ही हो जाता है। हम संसारी जीवोंका वर्तमान रूप भी इन उभय द्रव्यों के संयोग का परिणाम है। चैतन्य स्वरूप आत्मा अरूपी एव अनत शक्ति सम्पन्न है, जिसका निवासरूप हमारा यह शरीर पुद्गल परमाणुरूप जड़से ही निष्पन्न है। दृश्यमान जगत सारा पुद्गल का विलास है, आत्मा अरूपी होने से अनुभवगम्य है।

जड़ और चेतन द्रव्य द्वय में हम चेतन हैं, विचार शक्ति हमें ही प्राप्त है। अपना अपना विचार हरेक व्यक्ति करता है अत हमें अपना स्वरूप सब प्रथम जानना है इस दृष्टिकोण से भी जीव विज्ञानके अध्ययन की उपयोगिता सर्वाधिक है। प्रस्तुत जीवविचार प्रकरण उसी जीवविज्ञान की प्राथमिक पाठ्य पुस्तक है। यों तो जीवाभिगम, प्रज्ञापनादि जैनागमोंमें एतद्विषयक विशद विवेचन प्राप्य है पर साधारण जनता की उन ग्रन्थों तक पहुँच

कठिन होने की वास्तविकता को ध्यानमें रखकर पूज्यपाद जैनाचार्य श्रीशान्तिसूरिजी ने इस लघु प्रकरण का निर्माण किया है जिसके अध्ययन द्वारा साधारण व्यक्ति भी जैन धर्म के जीव-विज्ञान का प्राथमिक परिचय प्राप्त कर सकता है।

जैन धर्म अहिंसा प्रधान है, जीव रक्षा को इस में सब से अधिक महत्त्व दिया गया है और जीव स्वरूप को जाने बिना उसकी रक्षा का प्रयत्न संभव नहीं, इस लिये जैन दर्शन में जीव विज्ञान पर विशेष विवेचन मिलना स्वाभाविक ही है और अहिंसा के पालन के लिए हमें उसे जानना भी उतना ही आवश्यक है। इसीलिए जैनागमों में कहा है कि-"पढमं नाणं तओ दया" अर्थात् ज्ञान प्राप्तकर लेने पर ही दयाका पालन हो सकता है।

जैन दर्शन की अनेकानेक विशेषताओंमें उसका जीव-विज्ञान एवं कर्म-विज्ञान का विशद विवेचन भी एक है। जीव, उसका स्वरूप, उसके परिणाम-भाव, पुद्गल के संयोग से उसके विभिन्न पर्याय-अवस्थाएं, उन अवस्थाओंके कारण रूप विविध कर्म, कर्मों के बन्धके कारण एवं प्रकार, उदय, उदीरणा और उसके विनाश के उपाय का जितना सूक्ष्म, विशद विचार जैनदर्शन में पाया जाता है, अन्य किसी भी दर्शन में प्राप्य नहीं है। जैन धर्मके जीव-विज्ञानके महत्त्व का परिचय हम इसी एक बातसे पा सकते हैं कि जब वर्त्तमान विज्ञानका नामोनिशान भी नहीं था जैन तीर्थङ्करों ने आत्म निर्मलता से उत्पन्न विमल केवलज्ञान द्वारा पृथ्वी, जल अग्नि, वायु, एवं वनस्पति में भी जीव है, इसकी प्ररूपणा की थी।

तत्कालीन किसी भी जैनेतर दर्शन में ऐसे सूक्ष्म जीवों का निर्देश नहीं पाया जाता अपितु अन्य लोक उस मान्यताका परिहास किया करते थे पर वर्तमान विज्ञान ने इन स्थावर जीवों की सिद्धि कर भगवान महावीर के सिद्धान्तों को पूर्णरूपेण समर्थित किया है।

भगवान महावीरके पश्चाद्वर्त्ती जैनाचार्यों ने अनेक प्रकरण ग्रंथ एवं टीकाओं में जीवों के भेद प्रभेदादि पर सविशेष प्रकाश डाला है पर पिछली कई शताब्दियोंमें इस विज्ञान के आगे बढ़ान की कोई प्रगति हुई नजर नहीं आती। पूर्वाचार्यों के विवेचन को अनुभव एवं प्रयोगों द्वारा हम आगे नहीं बढ़ा सके और आज भी केवल उन प्राचीन ग्रंथों के शब्दों को दुहराने भर के अतिरिक्त कुछ प्रयत्न नहीं कर रहे हैं यह बड़े खेद की बात है। भारत के मनीषि वैज्ञानिकों द्वारा एवं पाश्चात्य जगत में गत शताब्दी में विज्ञान काफी उन्नत हुआ है हमें उसका गम्भीर अध्ययन एवं प्रयोगात्मक अनुभव प्राप्तकर अपने जीव विज्ञान को सुसंस्कृत एवं विशेष ज्ञानवर्द्धक बनाना चाहिए जिससे जैन धर्म के प्राचीन विज्ञानकी महत्ता समस्त विश्व को विदित हो एवं हमारी शंकाओं भ्रमपूर्ण मान्यताओं एवं अज्ञान का भी अन्त हो जाय।

प्रस्तुत प्रकरण जैसा कि ग्रंथ प्रणेता आचार्य श्री ने फरमाया है, श्रुत समुद्र में संक्षिप्त रूप में उद्धरण कर निर्माण किया है अतः इसमें विवेचित विषयों के बीज प्राचीन जैनागमों में से अन्वेषण कर इस विषयमें विशेष प्रकाश डालना आवश्यक है इस

अन्वेषण द्वारा हमारे सामने बहुत से नवीन तथ्य प्रकाशमें आवेंगे अतः अधिकारी आगमज्ञ मुनियों का इस आवश्यक कार्य की ओर ध्यान आकृष्ट करता हूं।

इस प्रकरणका नाम जीवविचार है, इसमें जीवोंके भेद प्रभेद, उनके निवास स्थान, शरीर व आयुष्य का प्रमाण एवं प्राणादि का विचार होने से प्रस्तुत नाम सर्वथा सार्थक एवं ग्रंथके विषय को स्पष्ट करने वाला है। इसके रचयिता श्री शांतिसूरि हैं यद्यपि इस नाम वाले अनेक जैनाचार्य हो चुके हैं पर तपागच्छ पट्टावली आदि के अनुसार जीवविचारके रचयिता वादिवेताल श्रीशांति सूरि हैं जो कि पाटणके अधिपति भीम एवं धारके विद्याविलासी नरपति भोज से सम्मानित थे। सं० १३३४ के प्रभाचंद्रसूरि कृत प्रभावक चरित्र में आपका निम्नोक्त जीवनवृत्त पाया जाता है:-

राधनपुर के निकटवर्त्ती ऊण ग्राम वासी धनदेव—धनश्री के आप पुत्र थे। आपका बाल्यावस्था का नाम भीम था। थारापद्रीय विजयसिंहसूरिसे दीक्षित हो आचार्य पद प्राप्ति के बाद आप शान्तिसूरि नाम से प्रसिद्ध हुए। पाटन के अधिपति भीम को सभामें आपने कवित्त्व एवं वादशक्ति का परिचय देकर कवीन्द्र एवं वादि-चक्रवर्त्ती विरुद प्राप्त किया। इसी प्रकार कविवर धनपाल की प्रार्थना से धार में जाने पर नरपति भोज की सभा में ८४ वादियों पर विजय प्राप्त कर वादि वेताल विरुद से सम्मानित हुए।

कविवर धनपालकी तिलकमंजरी कथाको संशोधितकर आपने

इस पर टिप्पण भी लिखा था। सुप्रसिद्ध वादिदेवसूरि के गुरु श्री मुनिचन्द्रसूरि आदि अनेक मुनियों को आपने प्रमाण शास्त्र का अध्ययन कराया था। आपके रचित उत्तराध्ययन की विशद टीका बड़ी महत्त्वपूर्ण है। चैत्यवन्दन भाष्य भी आपको ही रचना कही जाती है।

अपने ३२ शिष्यों मे से वीर शालिभद्र और सर्वदेव को आचार्य पद देनेके अनन्तर श्रावक सोढ के साथ गिरनार तीर्थ की यात्रार्थ पधारे और वहीं २५ दिन का अनशन पालनकर स० १०९६ के ज्येष्ट शुक्ल ९ मगलवारको कृतिका नक्षत्र में स्वर्गवासी हुए।

जीवविचार प्रकरण ५१ गाथा रूप लघु ग्रथ होने पर भी अपने विषय पर सुन्दर प्रकाश डालता है इसलिये इसका प्रचार सैकडों वर्षों से अच्छे रूप में पाया जाता है। कई विद्वानों ने इस पर सस्कृत में टीकाए, लोक भाषा मे बालावबोध—टब्बा आदि निर्मित किये हैं। हमारे सग्रह मे इस प्रकरण के मूल व भाषा टीकादि की पचासों प्रतियाँ विद्यमान है। इस प्रकरण के ६७ सस्करण विभिन्न सस्थाओं से गुजराती एव हिन्दी मे पूर्व प्रकाशित हो चुके हैं प्रस्तुत सस्करण श्रीयुत प० हीरालालजी दूगड ने बड़े परिश्रम से तैयार किया है। आपने इसे जन साधारण के लिये अधिकाधिक उपयोगी एव ज्ञानवर्द्धक बनाने का भरसक प्रयत्न किया है, कई यत्र एव चित्र देकर ग्रथ की उपयोगिता एव शोभा म अभिवृद्धि की गयी है। पर जैसा कि मैंने उपर्युक्त

पंक्तियों में वतलाया है वर्तमान विज्ञान से प्रस्तुत ग्रंथ मे वर्णित वातों का कहाँ तक समर्थन होता है एवं विवेचित —प्राणियों के सम्बन्ध में कितनी विशेष जानकारी प्राप्त हुई है इसके साथ-साथ इस प्रकरण के वोज किन किन प्राचीन आगमों से किस रूप में प्राप्त होते हैं इन दो वातों पर द्वितीय संस्करण में विशेष प्रकाश डालने का प्रयत्न अभी और अपेक्षित है आशा है इन विशेषताओं से समृद्ध वनाने की ओर ध्यान रखा जायगा।

श्रीयुक्त दूगडजीने इस ग्रन्थको उपयोगी वनानेमें जो श्रम उठाया है उसके लिये वे धन्यवाद के पात्र हैं। आशा है ऐसे ही अन्य उपयोगी प्रकरण ग्रन्थों को इसी प्रकार के विवेचनसह प्रकाश में लाकर वे जैन साहित्य की श्रीवृद्धि करते रहेंगे।

कलकत्ता
सं० २००६ ज्ये० शु० ६
(श्रीशांतिसूरि स्वर्गतिथि)
सं० ९१० } अगरचन्द नाहटा

शीघ्र मंगवा लें

नरक दुःख दिग्दर्शन चित्रपट साइज २२"×१४" मोटे आर्ट बोर्ड पर प्रिण्ट तीन रंगे ४३ नारक चित्र—शिक्षा प्रद तथा चित्ताकर्षक—फ्रेम में मढ़ाकर कर मकान और दुकान आदिमें रखने योग्य। मूल्य १॥) रु० ।

प्राप्ति स्थान:—पं० हीरालालजी जैन १२५ नायनी अप्पा नायक स्ट्रीट—मद्रास।

विवेचन सहित जीवविचार

का

विषयानुक्रम

जीव विचार [दूसरा विभाग]

परिशिष्ट

चित्र परिचय

दो शब्द

श्री जैन मार्ग प्रभावक सभा मद्रास के मंत्री महोदय भाई श्री रिषभदासजी ने अनेक विध कार्यों में व्यस्त रहने पर भी इस पुस्तक के लिये उपोद्घात लिख भेजने का कष्ट किया है अतएव उन्हें हार्दिक धन्यवाद दिये बिना कैसे रह सकता हूँ। इसके साथ साथ यह लिखे बिना भी नहीं रह सकता कि पुस्तकों की बाईंडिङ्ग होते होते उपोद्घात लिखे जानेके कारण ही इसे उचित स्थान पर न प्रकाशित कर यहीं प्रकाशित किया जा रहा है।

हीरालाल दूगड

श्री गौतमाय नमः

उपोद्घात

आश्चर्य होता है कि धारापति भोजराज के सभारत्न और तिलकमञ्जरी जैसे कठिन काव्य ग्रन्थ के कर्त्ता महाकवि धनपालने जिस महापुरुषके यशोगान किये हैं। तथा जिनको तत्कालीन भारतीय विद्वानों में प्रथम श्रेणीके प्रधान साक्षर स्वीकारा है, ऐसे स्वनामधन्य वादिवेताल आचार्य भगवान् श्रीशांतिसूरि जिन्होंने उत्तराध्ययन सूत्रपर ग्यारह हजार श्लोक प्रमाण वृत्ति लिखी है इसके अलावा और भी अनेक सुन्दर शास्त्रोंकी रचना की है ऐसे प्रखर विद्वान् ने जीवविचार जैसे छोटे प्रकरण को रचना करने मे क्या महत्व समझा होगा ? और आधुनिक भौतिक विज्ञानके प्रगतिशील युग में भूगर्भ विज्ञान (Geology) वनस्पति विज्ञान (Botony) और साथ ही-आजकल जब कि, प्राणि विज्ञान (Biology) के ऊपर बड़े संशोधन और गवेषणा पूर्वक ग्रन्थके ग्रन्थ (Volumes-& Volumes) प्रकाशित होते जारहे हैं और विश्वविद्यालयों (Universities) की प्रयोगशालाओं (Laboratories) में लाखों के खर्च से नानाविध विचित्र यंत्रों द्वारा उक्त विषयों के ज्ञान का सूक्ष्म अनुभव (Microscopical Experiments) कराने के लिये महान् प्रयत्न किये जा रहे हैं, ऐसे सुन्दर साधन उपलब्ध होते हुए भी ऐसे छोटे प्रकरण के प्रकाशित करने में क्या विशेषता समझी जाती है ? ऐसी समस्यायें हमारे पाठक वृन्द के हृदय में उपस्थित हुए बिना नहीं रहेंगी। इसलिये इसके समाधान में जहाँ तक कुछ नहीं कहा जाय वहाँ तक पाठकों को इस तरफ प्रेम नहीं

होगा और विना प्रेम के परमार्थ पाना कठिन है, इसलिये प्रासंगिक उपोद्घात रूपसे इस सम्बन्ध में दो शब्द लिखना उचित समझता हूं।

सबसे प्रथम देखा जाय तो पदार्थ विज्ञान के संशोधन में पौर्वात्य और पाश्चात्य विद्वानों की वृत्तिमें दिन रात का अन्तर है, क्योंकि प्रथम वर्ग का साध्यबिन्दु आध्यात्मिक है तथा द्वितीय का आधिभौतिक है। प्रथम में परमार्थ की प्रधानता है तथा द्वितीय में स्वार्थ की है इसलिये प्रथम वर्गके विद्वानों का यही लक्ष्य आज पर्यन्त बना रहा है कि जिस अन्वेषण से प्राणियों के हितसे अहित की मात्रा विशेष बढ़ती नजर आती हो उसे अपने व्यक्तित्व गौरव की लेश मात्र परवाह किये बिना ऐसी प्रवृत्ति को शीघ्र तिलांजली दे देते हैं। तब द्वितीय वर्ग के विद्वान, प्राणियों के हिताहित की लेशमात्र भी परवाह किये बिना कीर्त्ति और कंचन (Fame & Finance) के कूपमें झंपापात करने को कटिबद्ध हो जाते हैं और विद्वत्ता के उन्माद में हमारे आर्य महापुरुषों की तरफ हास्य और विनोद के कटाक्ष करने लगते हैं तथा हमारी नवीन अनभिज्ञ प्रजामें ऐसी भ्रांति फैलाते हैं कि पूर्वकाल में भारत वासियों में न तो बुद्धि का विकास था न पुरुषार्थ था और युगों तक केवल प्रमाद में अपना जीवन निरर्थक बिताते थे। इस तरह से हमारे पौर्वात्य आर्य महापुरुषों की प्रज्ञा और मेधा का महत्व घटाने का वातावरण फैलाते हैं। वास्तविक तौरपर विचार किया जाय तो आज दिन तककी पाश्चात्य लोगों की वैज्ञानिक शोधखोल का सार मात्र प्रजामें पाशविक वृत्तियों के विकास और मानवता

के ह्रास के सिवाय कुछ नजर नही आता। इनके अनेक प्रकार की वैज्ञानिक शोधखोलों में मुख्यतया भाप और विजली (Steam & Electricity) की तरफ भी दृष्टिपात करे तो केवल जल तरनी, थलचरनी और गगनगामिनी ये तीनों शक्तिये जो स्वाभाविक तौरपर बहुत कुछ अंशमे पाशविक जगत (Animal Kingdom) में उपलब्ध थी उनको उत्तेजन जरुर मिला है अर्थात मच्छ, कच्छ ज़लमें तैरते हैं घोड़े, बैल, हाथी भूमि पर भागते हैं और पंखी गगन गमन करते हैं सो इस तरह की पाशविक शक्ति को प्रगतिशील बनाने मे अपनी उत्कृष्टता का प्रभाव बताकर झूठे प्रलोभन में आर्य प्रजाको सुखाभास के जाल मे फंसाकर हमारे सच्चे गौधन, कृषिधन और अन्नधन का अंत लाकर हमे पतन की पराकाष्ठा की सीमा तक पहुंचा रहे हैं जिसमें से हमारा पुनरुत्थान होना पांचसौ वर्ष तक भी संभव नहीं है। सच कहा जाय तो जितने २ प्रमाण में विज्ञान का विकास होता जायगा उतने २ प्रमाण मे विशेष तौरपर संसार पर सङ्कटके बादल आच्छादित होते जायेंगे। और प्रबलसे प्रबल राष्ट्रोंका ह्रास होता जायगा। प्रजा विज्ञान के यंत्र जाल में मुग्ध वनकर अपने जीवन को विवेक शून्यता, इन्द्रिय लोलुप्यता, स्वार्थ परायणता और स्वच्छंदता आदि दुर्गुणोंका केन्द्र धाम बनाती जायगी और मानवताके महान् गुण अर्थात उदारता, वात्सल्यता, दाक्षिण्यता, कारुण्यता और सहनशीलता आदि सदा के लिये स्वप्नवत होते जायेंगे। तत्फलस्वरूप आखिर विधि की नैसर्गिक महासत्ता (The Government of Nature) का विरोध बढ़नेसे प्रजा को महाविकट परिस्थिति भोगे विना छुटकारा नहीं होगा। अगर हम सूक्ष्म बुद्धि से विधि की महासत्ता के विधान का अध्ययन करें तो स्पष्ट अनुभव हुए बिना नहीं रहेगा कि इन चित्र विचित्र रचनात्मक चराचर पदार्थों

को सौन्दर्यता से भरे हुए विराट विश्व की व्यवस्था विधि के महा सत्ता के सत्य और शाश्वते (Eternal Laws) नियमों द्वारा ही बड़े विवेक पूर्णता, कौशल्य और प्रमाणिकता के साथ बड़े नियमित रूपसे हो रही है* । हर एक उत्थान, पतन और परिवर्तन जगत के इस महा विधान पर अवलम्बित है। इतना ही नहीं, परन्तु प्राणिमात्र के जीवन-मरण, भरण-पोषण आदि जीवन की सकल घटनाओं में यही महानियम कारणभूत है। सूर्य, चन्द्र आदि नक्षत्रमंडल, अप, तेज, वायु, वनस्पति आदि उस महानियम के अनुसरण करने में विश्राम रहित सतत् प्रयत्नशील नजर आते है। और सब तरह की सुन्दर व्यवस्था के गर्भ में परोपकार की परिपूर्णता भी नजर आती है। इसलिये हमारे पूर्व ऋषियों का मन्तव्य था कि 'जो कुछ विधिकी प्रवृत्ति है वह शुभ हेतु ही है।' इसी गंभीर विषय पर फिर गहरा मनन करें तो मालूम होता है कि इतर प्राणियों की अपेक्षा से मानव प्राणी को विशेष प्रकारके संरक्षण के साधन, सुन्दर गात्र, प्रभावी प्रबल शक्ति और स्वतंत्रता के अधिकार आदि सब तरह की सुविधायें प्राप्त हुई हैं। इसमें विधि की महासत्ता का मानव प्राणी के साथ कोई पक्षपात नजर नहीं आता परन्तु विधि के विधान का परमार्थ केवल परोपकार होने से उसकी पूर्ति के लिये विधिके प्रधान प्रतिनिधि रूप मानव देह की रचना हुई है। कहने का भावार्थ यह है कि मानव प्राणी

---

*New Theory of Science

The univer e was nev r c eated and will never end but in permanent state of creation (Fred Hoyle)

Indian Express Magazine Secti on Dated 19 6 49

Who and what rules the universe ? So for as we can see it it rules itself and indeed th whole analogy with a country and its rule is false (Julian Huxley)

केवल परोपकारका पुतला है और परोपकार हेतुही उसका अस्तित्व हुआ है अगर मानव प्राणी अपने कर्त्तव्य का भान भूल कर प्राणी मात्रके हिताहित का विवेक पूर्वक विचार किये बिना अथवा परवाह किये बिना स्वार्थसाधन की पूर्ति मे कर्त्तव्यभ्रष्ट बन जावे तो इसमें वह विधि की महासत्ता का प्रबल विरोधी बनता है और यह निर्विवादित कहना पड़ेगा कि प्रबल से प्रबल शक्ति के साम्राज्य का भी विधि के विरोध मे विनाश, विध्वंस और महा पतन हुए बिना नहीं रहता। हमारे आर्यावर्त के गंभोर तत्त्व-गवेपक सन्त पुरुप इस सूक्ष्म रहस्य को बडे ढंग से समझ गये थे और मानव जीवन के जीवन सूत्रों का विधान ऐसा ही रचा है "परोपकारार्थमिदं शरीरम, परोपकाराय सतां विभूतयः, परोप कारः पुण्याय" ऐसे ऐसे ब्रह्मवाक्य एक ही आवाज से उद्घोपित करके, प्रजा के जीवनमें जागृति फैलाकर अपने कर्त्तव्य का पालन करते थे। और सारे मानव जोवन को इमारत ही इस पवित्र परोपकार की नीवपर निर्माण की जाती थी। मानव जीवन की प्रत्येक प्रवृत्ति (Every walk of life) के परदे मे परोपकार की प्रधानता थी और आर्य महापुरुष अपने अनुभव ज्ञानका बडे विवेक पूर्वक उपयोग करते थे और उनको योग्य पात्र व अधिकारी न मिले तो उस अनुभव ज्ञान को साथ मे लेकर हो संसार से अन्तर्धान होने में आनन्द मानते थे। परन्तु विवेकशून्य और विचारहीन आज के जैसे आसुरी वृत्ति वाले कुपात्रोंके हाथ तक उस अमूल्य ज्ञान को कभो नहीं जाने देते थे। यही कारण था कि उनकी अनेक दिव्य शक्तियां, अनुभव ज्ञान, विद्या और कला

बहुत कुछ प्रमाण मे उनके साथ अदृश्य होने से कम नजर आती हैं परन्तु उसका यह अर्थ नहीं है कि उन दिव्य विद्याओं का अस्तित्व नहीं था। आज भी हमारे प्राचीन भंडारों में जो शास्त्र मिलते हैं उनमे जो उपलब्ध बची खुची थोडी बहुत विद्याओं के उल्लेख पाये जाते हैं व भी आज के वैज्ञानिक ससार को आश्चर्य उत्पन्न किये बिना नहीं रहते। उन विद्याओं का जितना वर्णन करें उतना ही थोडा है। ऐसा कहना कोई अत्युक्ति नहीं है कि आजका वैज्ञानिक ससार स्वप्नमें भी इन विद्याओं की कल्पना नहीं पहुंचा सकता। उन महान् शास्त्रों की सीमा तक पहुचे बिना लोमडी के अगुर खट्टे कहने वालों के लिये तो हम सिवाय उपेक्षा के और कुछ नहीं कर सकते। आर्य तत्त्ववेत्ताओं के अनुभव ज्ञान की रूपरेखा का दिग्दर्शन उन्हीं के पथगामी साधु महात्मा लोग ही करा सकते हैं। मेरे जैसा अल्पज्ञ व्यक्ति न तो उसके योग्य है और न अधिकारी है। आर्य महात्माओं के सतति रूप कुछ पुरुषों के समागम म आने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ है और उनके सत्सग के प्रभाव से आर्यावर्त की अनुपम शक्तियों के विषय मे बड़ी विचित्र बात जानने में आई हैं। उन गहन विषयोंमें से कुछ बात जोकि केवल प्राणि विज्ञान (Biology) सम्बन्धी हैं। उनमें हमारे आर्य तत्त्ववेत्ताओं की और खासकर जैन दर्शन मे हमारे महान् पूज्य धर्माचार्यों की दिव्य दृष्टि कितनी दूर तक गई थी इस विषय पर इस जीवविचार प्रकरण के उपोद्घातमें प्रेमक महोदय के अनुरोध से कुछ बातें उद्धृत कर अपनी अल्पमति और स्मृति अनुसार प्रकाश डालने को बालचेष्टा कर रहा हूं। उनका

विस्तृत वर्णन तो हमारे आगम सिद्धान्तों में भरा हुआ है इस उपोद्-घात मे तो उसमें से केवल विन्दु मात्र लिखा है, परन्तु इससे भी पाठकवृन्द को भारत की भव्य विभूति का भान हुए बिना नहीं रहेगा। न तो उन दिनों में पर्यटन के सुलभ साधन ही थे न सूक्ष्मदर्शक और विपुलदर्शक यंत्र (Microscope & Telescope की शोध थी, परन्तु उन पुरुषों की अंतर ज्योति कितनी अजब गजब की थी इस बातका विचार पाठकवृन्द को बिना आये नहीं रहेगा। फर्क मात्र इतना ही है कि प्राणि विज्ञान की शोध-खोलका साध्य विन्दु आज उनके प्राणों को नाश कर उनके अवयव, गात्र और रक्त मांस मे से अपने नश्वर देह का भरण पोषण, रक्षण और मौज शौक करना है किन्तु हमारे आर्य तत्त्व-वेताओं के प्राणी विज्ञान में विश्व की रचना, उसकी व्यवस्था, उसके विधान के पालन और उल्लंघन से होता हुआ शुभाशुभ परिणाम और उन प्राणियों के साथ कर्तव्याकर्तव्य का विचार इत्यादि हेतु थे। और उस पर छोटे बड़े ग्रन्थ उन हेतुओं के उपलक्ष में लिखते थे जिससे प्रजा परोपकारी बन :— विधि की महासत्ता के विधान का अनुसरण कर अपना उत्कर्ष साधे। उनके अनु-भव ज्ञान का वर्णन जितना भी करे उतना थोडा है। ऐसी २ अनोखी बातों का वर्णन प्राणि विज्ञान सम्बन्धी प्राचीन ग्रन्थों में किया है जो आज हमारी बुद्धि की मर्यादा के बाहर है। हजारों वर्ष पूर्व के लिखे हुए जैन आगमों में उल्लेख मिलते है कि पृथ्वी, अप, तेउ, वायु और वनस्पति मे जीव है, इतना ही नहीं परन्तु उनमे भी मानव प्राणी के जैसी आहार, भय, मैथुन, निद्रा, परिग्रह,

हर्ष, शोक, लालसा आदि सब संज्ञाएं होती हैं और उसके समर्थन में कई वनस्पतियों के नाम निर्देश द्वारा सुन्दर वर्णन किया है। लज्जवती नाम की वनस्पति भयसंज्ञा वशात् निकट जाने से घबराती है। पीपल का वृक्ष काम संज्ञा वशात तरुण स्त्रियों के गीत गान और स्पर्श आदि में आनन्द मानता है। रुद्रवती शोक संज्ञावशात् रुदन करती है। और कई तरह के वृक्ष, वल्ली और लताएं भिन्न संज्ञावशात् अनेक तरह की प्रक्रिया करती हैं। उनमें भी अपने संरक्षण का बड़ा ख्याल रहता है और इसी लिये वल्लियें सब दिशाओं को छोड़कर दिवार या कांटों की वाड़ का आश्रय लेती है। इन संज्ञाओं के बारे में आधुनिक भारत के महान विज्ञानवेत्ता सर जगदीशचन्द्र वसु ने जगत को वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा प्रत्यक्ष सिद्ध कर बताया है और वसु महोदयने स्वयं अपने जर्मनी के लेक्चरों में साफ २ फरमाया था कि भारतवर्ष के प्राचीन शास्त्र आचाराङ्ग, जीवाभिगम आदि शास्त्रों में हमारे भारत के पूर्वाचार्योंने सैकड़ों वर्ष पूर्व ही सिद्ध कर लिया था। जैसे वनस्पति विषय का वर्णन है वैसे ही भिन्न २ धातु-पाषाणों तथा रत्नपाषाणों में चेतन साबित कर बतलाया था और आकाश में गर्जना से प्रगट होती बिजली, उल्कापात तथा काष्ठादि की अग्नि आदिमें भी जैनाचार्यों ने जीव सिद्धि की थी। यह सारा विषय इस उपोद्घात में समावेश करना कठिन है इस लिये यहाँ मैंने संक्षेप से ही उसकी रूप रेखा मात्र दर्शाई है। जैनाचार्यों ने वनस्पति के मुख्य दो भेद माने हैं। जिस वनस्पति के शरीर में एक जीव है उसको प्रत्येक वनस्पति कहते हैं और जिसमें अनन्त जीव हैं

उसे साधारण कहते हैं। कंद, मूल अंकुर, कोमल फल आदि अनेक तरह की साधारण वनस्पतियों के नाम और उनकी पहिचान के लक्षण शास्त्रोंमें बताये हैं। चातुर्मास कालमें आचार मुरब्बे, मेवे, मिठाई आदि पर प्रायः सफेद या दूसरे रंगों की फुंग फुल्ग (काई) जम जाती है जिसमें जैनाचार्यों ने अनंत जीव माने हैं और उसका समर्थन आज मेडीकल साइन्स को भी करना पड़ा है। कुछ वर्ष पूर्व मुझे मदनपली के आरोग्यावरम (Sanatorium) में एक मित्र को मिलने जाने का प्रसंग मिला था जो अच्छे प्रतिष्ठित और प्रभावशाली थे। उनका वहांके सारे डाक्टरों के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध था इसलिये उन्होंने मुझे वहां की प्रयोगशाला बताने के लिये वहां के सुपरिन्टेन्डेन्ट डाक्टर को प्रेरणा की थी। मुझे वे अपनी प्रयोगशाला मे ले गये और रक्त, श्लेश्म एवं कफ आदि के सूक्ष्म कीटाणुओं (Germs)तथा क्षयादि रोगोंके जंतुओं (Bacteria) को बतलाया था और फेफड़ों (Lungs) पर क्षय के जंतुओं का कैसे आक्रमण होता है, वे धीरे २ छिद्र (Cabities) कैसे करते हैं और अपना निवासस्थल(Colonies) कैसे बनाते हैं तथा किस तरह से उनकी वृद्धि (Growth) होती है; सो मुझे बडी पद्धतिसर समझाया था। तब मैंने उस निवासस्थान (Colony) (जिसकी साईज एक चने की दाल से ज्यादा नहीं थी) के बारे में उस डाक्टर से पूछा कि इसमें कितने जंतु रहते होंगे ? डाक्टर साहिब ने झट से जवाब दिया कि इन जंतुओं की क्या संख्या बताऊं ? यह स्थान उनका नगर और देश नहीं है परन्तु उनका एक महाद्वीप है। असंख्यात जंतुओं का निवास इस

छोटी सी जगह मे है। तब मुझे जैनाचार्यों के इसकथन पर बडा ही निश्वास हुआ कि कद मूल नील-फूलादि मे सूई के अग्र भाग के स्थान मे अनत जीव रहते हैं, और उनके अनुपम ज्ञानके लिये हृदय मे बडा आदर हुआ।

डाक्टर स्कोर्विस ने पानी के एक बिन्दु मे ३६४५० जीवों की संख्या बतलाई है परन्तु जैनाचार्यों ने तो असंख्यात जगम और स्थावर जीव (Mobile & Immobile) प्रथम से ही बतलाये है। एक दफे मुझे एक डाक्टर मित्र के द्वारा एक जल बिन्दु को सूक्ष्मदर्शक यत्र (Microscope) के नीचे रखकर देखने का प्रसंग मिला था। उसमे भी मुझे बडी आश्चर्यजनक बातें जैनाचार्यो की मान्यता के समर्थन म मालूम हुई थी अर्थात् मैंने देखा कि बडे सरोवर मे जिस तरह से मत्स्य गलन न्याय चलता है उसी तरह से इस पानी के बिन्दु मे भी दुर्बल प्राणियों का सबल प्राणियों द्वारा सघात हो रहा था। इस सघात की क्रिया के साथ २ उस बिन्दु मे दौडा दौड करते हुए उन जन्तुओं मे से एक जतुकी बडी माया की चाल नजर आई अर्थात् मुझे वह एक ठिकाने पर छिप कर बैठा हुआ नजर आया जब दूसरे जतु दौडते हुए उसके नजदीक पहुचे तब उसने झट से उनपर आक्रमण किया और क्षण मात्र मे ही उन प्राणियों का सहार कर दिया। एक जल बिन्दु मे होती हुई ऐसी आश्चर्य जनक घटना से मेरे विस्मय का पार नही रहा। अहो! हमारे जैनाचार्यो न सूक्ष्म से सूक्ष्म जीवों में सब प्रकार की सत्ताओं का कैसा सुन्दर वर्णन किया है इसका प्रत्यक्ष अनुभव हुआ तब अन्तरात्मा से उनके अतुल ज्ञान के प्रति अटल श्रद्धा हुई।

अब वनस्पति विज्ञान का अन्वेषण (Botanical Research) इतना आगे बढ़ने के बाद आज सुना जाता है कि आसाम और अफ्रिका आदि के जंगलोंमें ऐसे २ वृक्ष भी है कि जो प्राणियों का आहार करते है। अर्थात् जब कोई पक्षी आकर उस वृक्ष पर बैठता है तब वह फौरन उसे पत्तोंके नीचे दबा लेता है और रक्त शोषण करके उसके कलेवर को फेंक देता है। कोई कोई वृक्ष तो ऐसे है कि यदि कोई मनुष्य उनके नीचे जाकर बैठता है तो उसको चालबाजी से डाली नीचे झुकाकर पकड लेते है और उसे खेंचकर अपने धड़के साथ भीड़ा कर सारे रक्त का शोषण कर लेते है। परन्तु ऐसी मांसभक्षी प्राणीघातक वनस्पतियों का वर्णन जैनाचार्यों द्वारा प्राचीन शास्त्रों मे भी पाया जाता है। पानी झरते हुए तथा प्रकाश देते हुए वृक्षों की मौजूदगी भी आज कल सुनने में आती है, इस विषय के भी जैन शास्त्रों मे उल्लेख मिलते हैं, इत्यादि अनेक तरह का विस्तृत वर्णन पशु पक्षी जलचरादि प्राणियों के बारे मे बहुत कुछ प्राचीन आगम सिद्धान्तो मे पाया जाता है इस विषय पर जितना लिखें उतना थोड़ा है।

जलचर प्राणियों के विषय मे तो जैनाचार्यों का ऐसा मत है कि (वलिया और नलिया) गोल और केलुकी आकृति को छोड़ कर जितनी भी प्राकृतिक आकृतियाँ प्राणी वगैरह की हैं वैसी सब आकृतियों के जलचर प्राणी होते हैं और उसकी पुष्टि में मत्स्य संग्रहालयों (Aquarium मे उपरोक्त दोनों आकार के सिवाय नानाविध आकृति की रंग बिरंगी मछलियाँ पाई जाती हैं और कोई कोई स्थान मे तो मानवाकार की मछलियाँ आजकल

प्रत्यक्ष सुनने मे आती है। जनशास्त्रों मे भी मानव आकृति वाली मछली के बारे में लिखा हुआ मिलता है अर्थात ऐसी ऐसी आश्चर्य जनक बातें लिखी हैं कि विशेष वर्णन दर्शाने मे सामान्य प्रजा को अविश्वास हो जायगा। जैसे कि शृंगी मच्छ का वर्णन आता है शास्त्रकार फरमाते हैं कि वह लवणसमुद्र के बीच मे रहकर सदा मीठे जल का पान करता है सो किस तरह से उसका मीठे जलका पान प्राप्त होता होगा यह हमारी समझ के बाहर का विषय है। शास्त्रों मे इस शृंगी मच्छ को उपमा कलिकाल मे धर्म करने वाले प्राणियों के लिये जगह २ दी हुई नजर आती है। इसी तरह तंदुल मच्छ का वर्णन भी आता है। यह तंदुल नाम का मच्छ स्वयंभूरमण जैसे महासमुद्र में रहने वाले बड़े बड़े मगर मच्छों की आँख के पलक के बाल मे जू की भांति रहता है। वह मगर जब आहार से तृप्त होकर जल मे पड़ा २ श्वासोश्वास लेता है यद्यपि उस समय उसके मुखमे छोटे बड़े हजारों मच्छ आते जाते रहते हैं तथापि उसे उनको खाने का ख्याल तक भी नहीं आता। तब वह दुष्ट परिणाम वाला छोटा तंदुल मच्छ जोकि उन मच्छों को मारने म असमर्थ है तो भी विचारता है कि अगर इस मूर्ख मगर के जैसा मेरा बड़ा शरीर होता तो म इन सब को गल जाता अर्थात् भक्षण कर लेता। केवल इस दुष्ट परिणाम से बिना प्राणियों की हिंसा किये ही वह मरकर सातमी नरकमे जाता है ऐसा जैन शास्त्र फरमाते हैं और उसके दृष्टान्त को मनसे पाप बांधने वाले मनुष्यों के लिये घटाया है कि काय और वचन से कुछ पाप किये बिना मन के रौद्र परिणाम मात्र से भी नरक दुर्गति होती है।

इसी तरह से रोहित मच्छ के बारे में कथन है कि समुद्र मे उत्पन्न एक हजार योजन विस्तार और आंटे काटे वाली विकट वल्ली के अन्दर अन्धकार में उसकी उत्पति है। अनेक आंटों के नीचे दवा हुआ वह मच्छ महा अन्धकार मे इधर उधर घूमता रहता है। दैवयोग से नदी-पाषाण-न्यायेन वह उस वल्लीके ऊपर आ पहुंचता है और अकस्मात् सूर्य की ज्योति को देखकर बहुत ही प्रफुल्लित होता है। उस आनन्द में वह अपने सहचारी मच्छों को उस प्रकाश मे बुलालाने के लिये फिर आंटों के नीचे उतरता है और वही अंधकारमें मुर्भा जाता है क्योंकि पुनः उसका भी इस प्रकाशमय स्थान पर आना महा दुर्लभ हो जाता है। संसार मे विषय वासना मे मग्न होकर मानव जीवन को हार जाने वाले प्राणियों को पुनः मानव जीवन प्राप्ति की दुर्लभता के साथ शास्त्र-कारों ने घटाया हैं।

अंडगोल मच्छ का वर्णन भी इस तरह से आता है कि वह एक महा भयानक स्वभाव वाला मच्छ है। पूर्वकालमें समुद्रके पदार्थ अन्वेषक लोग उसको बड़े कठिन प्रयोगों द्वारा मारकर उसके अंड-कोष की गुटिका निकालते थे जिसके प्रयोग से वे लोग बहुत गहरे समुद्रमें निर्भयता पूर्वक प्रवेश किया करते थे। ऐसे २ कई तरह के जलचर प्राणियोंके नाम और स्वभाव के बारेमें जैन शास्त्रोंमें वर्णन

मिलता है। पदार्थ मिश्रण और पृथक्करण से भी जीवोत्पत्ति होती है इसलिये द्विदल अनाज और कच्चे गोरस के संयोग से तथा मधु [illegible] न में अनेक जीवोत्पत्ति होने से खाने की सख्त मनाई की है।

बढ़े तो यह उपोद्घात ग्रन्थ का रूप धारण कर लेगा इस भय से सक्षेप म ही कुछ लिखा है। पक्षियों के बारे मे तो ऐसा भी लिखा हुआ है कि कोई पक्षी तो बठने तथा उडने मे पाख खोलते नहीं तथा कई बैठने एव उडने म सदा खुली हुई ही पांखे रखते हैं। चकोर चातक, भारड आदि पक्षियों की आश्चर्य जनक प्रकृतियां और आकृतियां का वर्णन भी किया है इसी प्रकार मनुष्यों के बारे मे भी बडी विचित्र बात लिखी हुई पाई जाती हैं। अतरद्वीप और युगलिक क्षेत्र के मनुष्यों के बारे मे कैसी सुन्दर बातें पाई जाती हैं। स्त्री पुरुष दोनों का साथ मे जन्म और मरण होता है। बड़े कोमल सुडोल सौम्याकृति वाले और बड़े शरीर धारी होते हुए भी बहुत ही अल्पाहारी होते हैं उनके जीवन सम्बन्धी सारी अवस्थाओं के बारे में बहुत कुछ लिखा है ऐसी अनेक बातें हमें सिद्ध कर बतलाती है कि केवल जीव विज्ञान ही नहीं परन्तु भूगर्भ विज्ञान, ज्योतिष विज्ञान, गणित विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, रसायन विज्ञान और खासकर अणुविज्ञान आदि प्रत्येक विज्ञान के क्षेत्रमें उन महान् जैनाचार्यो की कितनी गहन दिव्यदृष्टि पहुंची थी जिसकी तुलना मे आजका विज्ञान कुछ भी नहीं है। सारांश यह है कि सर्वज्ञ तीर्थंकर परमात्माओं के विश्व कल्याण करने के उद्देश्य की सिद्धि मे व विनीत भाव से कितने रक्त तथा समर्पित जीवन वाले थे एव उनके सारे विज्ञान का निष्कर्ष अथवा सार ससार म सेवा और श्रेय के लिये था। दम्भ और प्रतिष्ठा के प्रलोभन के पाप से वे सदा दूर थे। प्रस्तुत प्रकरण को भी उसी श्रेय के साध्य से ही हमारे धुरन्धर विद्वान आचार्यदेव

श्री वादिवेताल शांतिसूरीश्वरजी ने आगम सिद्धान्तके सार रूप रचने की कृपा की है। और उसकी उद्देश्य पूर्ति हेतु ही आज की प्रचलित हिन्दी भाषा मे पंडित महोदय श्रीयुत् हीरालालजी दूगड़, शास्त्री के पास अनुवाद कराकर प्रकाशित किया है और वास्तवमे पंडितजी ने प्रकरण की मूल गाथाओ के अन्वय, शब्दार्थ, गाथार्थ और विशेषार्थ इत्यादि लिखने के लिये बड़ा परिश्रम उठाया है इतना ही नहीं परन्तु काव्य रसिक पाठकों के लिये सारे प्रकरण का भावार्थ पद्यमें रचकर सुवर्ण में सुगन्ध जैसा काम किया है जिसके लिये वे बड़े धन्यवाद के पात्र हैं और जिन महाशयों ने इसे प्रकाशन करने के लिये द्रव्य सहायता की है उनका भी हमारी सभा की तरफ से आभार मानता हूं और इसमें दिये हुए चित्रों को बनानेमें तथा ब्लॉक्स आदि तैयार कराने में हमारे बहुत से सदस्यों ने अपने अमूल्य समय का भोग दिया है उसका भी अनुमोदन करना आवश्यक समझता हूं हालांकि सभाके सदस्य होनेके नाते से उनके फर्ज से विशेष नहीं है। अब मैंने अपने उपोद्घात मे यदि मतिमन्दता के कारण शास्त्र मर्यादाओं का उल्लंघनादि दोष सेवन किया हो तो उसके लिये क्षमा याचनापूर्वक विरमता हूं।

मद्रास
ता० १६-६-४६

धर्मानुरागी "रिषभ"
मन्त्री
श्री जैन मार्ग प्रभावक सभा

शांति शांति शांति

—*:०:*—

इस पुस्तक के ब्लौक्स के लिये खर्चा दाता

फर्म—शा० रिखबदास माधाजी—मद्रास
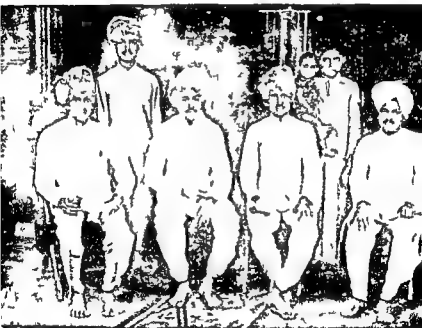
पिछली लाइन—१ शा० पुखराज २ शा० गणेशमल

अगली लाइन—१ शा० फूलचन्द २—शा० माहेच चन्द

३ शा० छगनराज ४ शा० हमराज

॥ श्री जीव विचार प्रकरण मूल ॥

॥ आर्या वृत्त ॥

भुवण पईव वीर नमिऊण भणामि अबुह बोहत्थ ॥
जीव सरूव किंचि वि जह भणिय पुव्व सूरीहिं ॥ १ ॥
जीवा मुत्ता संसारिणो य तस थावरा य संसारी ॥
पुढवि जल जलण वाऊ वणस्सई थावरा नेया ॥ २ ॥
फलिह मणि रयण विद्दुम-हिंगुल हरियाल मणसिल रसिंदा ॥
कणगाइ धाऊ सेढी वन्निय अरणेट्टय पलेवा ॥ ३ ॥
अब्भय तूरी ऊस मट्टी पाहाण जाईओ णेगा ॥
सोवीरंजण लुणाइ पुढवी भेया इ इच्चाइ ॥ ४ ॥
भोमंतरिक्खमुदग ओसा हिम करग हरितणू महिया ॥
हुंति घणोदहिमाई भेया णेगा य आउस्स ॥ ५ ॥
इंगाल जाल मुम्मुर उक्कासणि कणग विज्जुमाइया ॥
अगणि जियाण भेया नायव्वा निउण बुद्धीए ॥ ६ ॥
उब्भामग उक्कलिया, मंडलि मह सुद्ध गुंजवाया य ॥
घण तणु वायाइया भेया खलु वाउ कायस्स ॥ ७ ॥

साहारण पत्तेया वणस्सइ जीवा दुहा सुए भणिया ॥
जेसिमणंताणं तणू एगा साहारणा ते उ ॥ ८ ॥
कंदा अंकुर किसलय पणगा सेवाल भूमिफोडा य ॥
अल्लयतिय गज्जर मोत्थ वत्थुला थेग पल्लंका ॥ ९ ॥
कोमल फलं च सव्वं गूढ सिराइं सिणाइ पत्ताइं ॥
थोहरि कुँआरि गुग्गुलि गलोय पमुहा इ छिन्नरुहा ॥ १० ॥
इच्चाइणो अणेगे हवंति भेया अणंत-कायाणं ॥
तेसिं परिजाणणत्थं लक्खणमेयं सुए भणियं ॥ ११ ॥
गूढ सिर संधि पव्वं सम भंगमहीरुगं च छिन्न रुहं ॥
साहारणं सरीरं तव्विवरियं च पत्तेयं ॥ १२ ॥
एग सरीरे एगो जीवो जेसिं तु ते य पत्तेया ॥
फल फूल छल्लि कट्ठा, मूलग पत्ताणि बीयाणि ॥ १३ ॥
पत्तेयतरुं मुत्तुं पंचवि पुढवाइणो सयल लोए ॥
सुहुमा हवंति नियमा अंतमुहुत्ताऊ अद्दिस्सा ॥ १४ ॥
संख कवड्डय गंडुल जलोय चंदणग अलस लहगाइ ॥
मेहरि किमि पूयरगा बेइंदिय माइवाहाइ ॥ १५ ॥
गोमी मंकण जूआ पिपीलि उद्देहिया य मक्कोडा ॥
इल्लिय घयमिल्लीओ सावय गोकीड जाइओ ॥ १६ ॥

गद्दहय चोरकीडा गोमयकीडा य धन्नकोडा य ॥
कुंथु गोवालिय इलिया तेइंदिय इंदगोवाइ ॥ १७ ॥
चउरिंदिया य विच्छू ढिंकुण भमरा य भमरिया तिड्डा ॥
मच्छिय डंसा मसगा कंसारी कविल-डोलाइ ॥ १८ ॥
पंचिंदिया य चउहा नारय तिरिया मणुस्स देवा य ॥
नेरइया सत्तविहा नायव्वा पुढवी-भेएण ॥ १९ ॥
जलयर थलयर खयरा तिविहा पंचिंदिया तिरिक्खा य ॥
सुसुमार मच्छ कच्छव गाहा मगरा य जलचारी ॥ २०॥
चउपय उरपरिसप्पा भुयपरिसप्पा य थलयरा तिविहा ॥
गो सप्प नउल पमुहा बोधव्वा ते समासेण ॥ २१ ॥
खयरा रोमय-पक्खी चम्मय-पक्खी य पायडा चेव ॥
नर-लोगाओ बाहिं समुग्ग-पक्खी वियय पक्खी ॥ २२ ॥
सव्वे जल-थल-खयरा समुच्छिमा गब्भया दुहा हुंति ॥
कम्मा-कम्मग-भूमि अंतरदीवा मणुस्सा य ॥ २३ ॥
दसहा भवणाहिवइ अट्ठविहा वाणमंतरा हुंति ॥
जोइसिया पंचविहा दुविहा वेमाणिया देवा ॥ २४ ॥
सिद्धा पनरस भया तित्था-तित्थाइ सिद्ध भेएण ॥
एए संखेवेण जीव-विगप्पा समक्खाया ॥ २५ ॥

एएसिं जीवाणं सरीरमाऊ ठिई स-कायम्मि ॥
पाणा जोणि पमाणं जेसिं जं अत्थि तं भणिमो ॥ २६ ॥
अंगुल असंख भागो सरीर—मेगिदियाण सव्वेसिं ॥
जोयणं सहस्समहियं नवरं पत्तेय रुक्खाणं ॥ २७ ॥
बारस जोयण तिन्नेव गाउआ जोयणं च अणुक्कमसो ॥
बेइंदिय तेइंदिय--चउरिंदिय देहमुच्चत्तं ॥ २८ ॥
धणु सय पंच पमाणा नेरइया सत्तमाइ पुढवीए ॥
तत्तो अद्धद्धूणा नेया रयण प्पहा जाव ॥ २६ ॥
जोयण सहस्स माणा मच्छा उरगा य गब्भया हुंति ॥
धणुह पुहुत्तं पक्खिसु भुअचारी गाउअ पुहुत्तं ॥ ३० ॥
खयरा धणुह पुहुत्तं भुयगा उरगा य जोयण पुहुत्तं ॥
गाउअ पुहुत्त मित्ता समुच्छिमा चउप्पया भणिया ॥ ३१ ॥
छच्चेव गाउआइं चउप्पया गब्भया मुणयव्वा ॥
कोस तिगं च मणुस्सा उक्कोस सरीर माणेणं ॥ ३२ ॥
ईसाणंत सुराणं रयणीओ सत्त हुंति उच्चत्तं ॥
दुग दुग दुग चउ गेविज्ज-णुत्तरेक्किक्कपरिहाणी ॥ ३३ ।
बावीसा पुढवीए सत्त य आउस्स तिन्नि वाउस्स ॥
वास-सहस्सा दस तरु-गणाण तेऊ तिरत्ताऊ ॥ ३४ ॥

वामाणि नारमाऊ नेइ दियाण तेड दियाण तु ॥
अउणापन्न दिणाइ चउरिंदीण तु छम्मामा ॥ ३५ ॥
सुर नेरइयाण ठिई उक्कोसा मागराणि तित्तीस ॥
चउप्पय तिरिय मणुस्मा तिन्निय पलिओनमा हुति ॥३६॥
जलयर उर भुयगाण परमाऊ हाइ पुव्व कोडी उ ।
पक्खीण पुण भणिओ जमख भागो य पलियस्म ॥३७॥
सव्वे सुहुमा माहारणा य समुच्छिमा मणुस्सा य ॥
उक्कोस जहन्नेण अतमुहुत्त चिय जियति ॥ ३८ ॥
ओगाहणाउ माण एव सखवओ समक्खाय ॥
जे पुण इत्थ विसेमा विसेम सुत्ताउ ते नेया ॥ ३९ ॥
एगिंदिया य सव्वे असख उस्सप्पिणी सकायम्मि ॥
उववज्जति चयति य अणत- काया अणताओ ॥ ४० ॥
सखिज्ज समा विगला सत्तट्ठ भवा पणिंदि तिरि मणुआ ॥
उववज्जति सकाए नारय देवा य नो चेव ॥ ४१ ॥
दसहा जिआण पाणा इ दिय ऊसास आउ वल रूवा ॥
एगिंदिएसु चउरो विगलेसु छ सत्त अट्ठेव ॥ ४२ ॥
असन्नि सन्नि पंचिदिएसु नव दस कमेण बोधव्वा ॥
तेहिं सह विप्पओगो जीवाण भण्णए मरण ॥ ४३ ॥

एवं अणोर पारे संसारे सायरम्मि भीमम्मि ॥
पत्तो अणंत खुत्तो जीवेहिं अपत्त धम्मेहि ॥ ४४ ॥
तह चउरासी लक्खा संखा जोणीण होइ जीवाणं ;
पुढवाईणो चउण्हं पत्तेयं सत्त सत्तेव ॥ ४५ ॥
दस पत्तेय तरूणं चउदस लक्खा हवंति इयरेसु ॥
विगलिंदिएसु दो दो चउरो पंचिंदि-तिरियाणं ॥ ४६ ॥
चउरो चउरो नारय सुरेसु मणुआण चउदस हवंति ॥
संपिंडिआ य सव्वे, चुलसी लक्खा जोणोणं ॥ ४७ ॥
सिद्धाणं नत्थि देहो न आउ कम्मं न पाण जोणीओ ॥
साइ अणंता तेसिं ठिई जिणंदागमे भणिआ ॥ ४८ ॥
काले अणाइ निहणे जोणि गहणम्मि भीसणे इत्थ ॥
भमिया भमिहिंति चिरं जीवा जिण वयण मलहंता ॥४९॥
ता संपइ संपत्ते मणुअत्ते दुल्लहे वि सम्मत्ते ॥
सिरि संति सूरि सिट्ठे करेह भो ! उज्जमं धम्मे ॥ ५० ॥
एसो जीव वियारो संखेव रुईण जाणणा हेऊ ॥
संखित्तो उद्धरिओ रुद्दाओ सुय समुद्दाओ ॥ ५१ ॥

॥ इति श्री जीव विचार प्रकरणं ॥

॥ अर्हं ॥

वादि वेताल श्री शांति सूरि प्रणीत—

॥ जीव विचार प्रकरण ॥

विवेचन सहित

इस जगतमे हमे दो प्रकारके पदार्थ दिग्वलाई देते हैं। इन में से कुछ तो इस प्रकार है जो एक स्थान पर ही पड़े रहते हैं, जैसे ईट काष्ट, खाट, चौकी, अलमारी, कुर्सी मेज मकान वगैरह, उन्हें हम जड पदार्थ कहते है। तथा कुछ पदार्थ चलते-फिरते, सोते-जागते, खाते-पीते, उठते-बैठते, काम करते श्वास लेते देखे जाते हैं, जैसे जोंक, केंचुए चींटी, कीड़े, मकोड़े मच्छर, मक्खी, सांप मछली, घोड़ा, कबूतर, न्योला, चूहा, पुरुष, स्त्री वगैरह। ये जड़ पदार्थों के सिवाय दूसरे प्रकारके—जीवित पदार्थ हैं। इन्हें हम जीव कहते हैं। इस प्रकरणमे दूसरे प्रकार के पदार्थोंका ही सक्षेपसे विचार किया गया है। यों तो श्री जीवाभिगम सूत्र, श्री पन्नवणा सूत्र तथा श्री भगवती सूत्र वगैरह अनेक आगम ग्रथोंमे तथा बडे बडे प्रकरणोंमें जीवके स्वरूप आदि का विवेचन खूब विस्तार से किया है। किन्तु सामान्य बुद्धि वाले बाल मनुष्य प्रारम्भ मे इन्हें नहीं समझ

सकते इस लिए अनेक उपकारो पूर्वांचार्यों ने-जोव का स्वरूप संक्षेप में वतलाने वाले अनेक प्रकरण वनाये हैं। उनमें से एक यह जोवविचार भो है। क्योंकि इस मे जोव के विषय मे विचार किया गया है इसलिए इस के कर्त्ता आचार्य ने इस का नाम जोवविचार रखा है। अर्थात् जोव का स्वरूप तथा जोव कितने प्रकार का है इत्यादि का संक्षेप मे ज्ञान कराना इस प्रकरण का उद्देश्य है। जिसका इस प्रकरण के कर्त्ता—आचार्य भगवान स्वयं हो पहलो गाथा में निर्देश करते हैं।

मंगलाचरण, विषय, संबन्ध, प्रयोजन, और अधिकारी,

***भुवण-पईवं वीरं, नमिऊण भणामि अवुह-वोहत्थं।**
जीव-सरूवं किंचिवि, जह भणियं पुव्व-सूरीहिं।१।

अन्वयः—भुवण-पईव वीर नमिऊण, जह पुव्व-सूरीहि भणिय [तह] किंचिवि जीव-सरूव अवुह-वोहत्थ भणामि ॥१॥

शब्दार्थ

भुवण-पईवं = संसारमें दीपकके समान	**[तह]** = वैसा
वीरं = भगवान श्री महावीर स्वामीको	**किंचिवि** = किंचित मात्र—संक्षेपसे
नमिउण = नमस्कार करके	**जीव-सरूवं** = जीव का स्वरुप
जह = जैसा	**अवुह-वोहत्थं** = अज्ञ जीवोंको ज्ञान कराने के लिये
पुव्व सूरीहि = पूर्व आचार्यों ने	
भणियं = कहा है	**भणामि** = कहता हूं

**भुवन प्रदीपं वीरं नत्वा भणामि अवुध वोधार्थम् ।*
जीव स्वरूप किंचिदपि यथा भणित पूर्व सूरिभिः ॥

गाथार्थ

भुवन (संसार) में दीपक समान भगवान श्री महावीर स्वामी को नमस्कार करके जैसा पूर्वाचार्यों (पुराने आचार्यों) ने कहा है [वैसा] जीव का स्वरूप संक्षेप से अज्ञ जीवों को ज्ञान कराने के लिये मैं कहता हूं ॥१॥

विवेचन

इस गाथामें मुख्यतया मंगलाचरण, विषय, सम्बन्ध, प्रयोजन, और अधिकारी इन पांच बातों का वर्णन है।

१—"भुवनमें दीपक समान भगवान श्री महावीर स्वामी को नमस्कार करके" —इन पदों से ग्रंथकर्त्ता ने मंगलाचरण किया है।

मंगलाचरण करने से ग्रंथ रचने वाले तथा पढ़ने पढ़ाने वालों के विघ्न दूर होते हैं। विघ्नों को दूर करने के लिए तथा मंगलाचरण करने की—शिष्ट पुरुषों के आचार की प्रवृत्ति शिष्यों में कायम रखने के लिए—यह भाव मंगल प्रकरण के प्रारम्भ में दिया गया है।

२—"जीव का किंचित् स्वरूप" —इन पदों से इस प्रकरण का विषय बताया गया है।

३—"जैसा पूर्वाचार्यों ने कहा है वैसा" इन पदों से (मात्र अपनी कल्पना से नहीं परन्तु) गौतम स्वामी, सुधर्मा स्वामी आदि गणधरों, और जम्बु स्वामी आदि पूर्वाचार्यों ने जिस

प्रकार सिद्धांत और प्रकरण ग्रंथों मे वर्णन किया है; उसी प्रकार मैं कहूंगा। इस प्रकार संबन्ध बतलाया है।

४—"अज्ञ (अनजान) जीवों को ज्ञान कराने के लिए"—इन पदों से इस प्रकरण की रचना का प्रयोजन बताया है। अज्ञ जीव दूसरे बड़े ग्रंथों से समझ नहीं सकते इस लिए यह छोटा प्रकरण रचना पड़ा है।

५—"अज्ञ जीवों को"—इन पदों से जीवविचार जानने की इच्छा वाले, जैन धर्म के श्रद्धालु तथा जीव के स्वरूप को न जानने वाले जीवों को इस प्रकरण के पढ़ने का अधिकारी बतलाया है।

प्रश्न—जीव का स्वरूप जानने से क्या लाभ है?

उत्तर उनको हम अपनी आत्मा के समान समझ कर उनसे वर्ताव करें—उनको तकलीफ न पहोंचावें। १

प्रश्न—यदि हम उनको सतावेंगे तो क्या होगा?

उत्तर—वे भी हमें सतावेंगे—बदला लेंगे. इस वक्त कमज़ोर होने के कारण बदला न ले सकेंगे तो दूसरे जन्म मे लेंगे।

प्रश्न—भुवन कितने और उनके नाम क्या है?

उत्तर—भुवन तीन हैं:—स्वर्ग मर्त्य और पाताल अथवा ऊर्ध्व, मध्य और अधो।

प्रश्न—श्री महावीर भगवान् को भुवन प्रदीप क्यों कहा?

उत्तर—जैसे दीपक घट पट आदि पदार्थों को प्रकाशित करता है वैसे भगवान् सारे पदार्थों का प्रकाशित करते हैं—खुद जानते हैं तथा समवसरण मे औरों को उपदेश देते है। १

१—शास्त्र का फरमान है कि —"पढम नाणं तओ दया," एव चिट्ठई सव्व सजए अन्नाणो कि काही? किंवा नाहीय सेय पावग"? पहले ज्ञान होगा तभी अहिंसा धर्म का पालन हो सकता है।

जैसे दीपक का प्रकाश भोंयरे आदि मे भी ले जा सकते हैं वैसे सूय का प्रकाश नहीं जा सकता अर्थात् प्रभु महावीर जगत का चाहे कैसा भी सूक्ष्म विषय क्यों न हो उन सब प्रकार के सूक्ष्म से सूक्ष्म स्वरूप को भी जानते हैं। २

देहरी (देहली-दलहेज) पर रहा हुआ दीपक जैसे अन्दर, बाहिर, एव उस देहरी पर (तीनों जगह) प्रकाश करता है वैसे ही प्रभु महावीर इस मध्य लोक में रहते हुए ऊर्ध्व, अधो एव मध्य इन तीनों लोकों को अपने केवल ज्ञान द्वारा प्रकाशित करते हैं— अर्थात् तीनों लोकों के समस्त पदार्थों को जानते हैं और समवसरण में बारह पर्षदा के सामने उपदेश देकर प्रकाशित करते हैं। ३

प्रश्न—इस जीवविचार प्रकरण के कर्त्ता कौन हैं ?

उत्तर– वादि-वेताल श्री शांति सूरीश्वर जी महाराज इसके कर्त्ता हैं। इनका जीवनचरित्र प्रभावक चरित्र नाम के ग्रंथ में है।

जीव विचार [प्रथम भाग]

जीवों के मुख्य भेद ससारी जीवों के भेद, स्थावर जीवों के भेद

*जीवा मुत्ता ससारिणो य, तस थावरा य ससारी।
पुढवी-जल-जलण-वाउ, वणस्सई थावरा नेया॥२॥

---

*जीवा मुक्ता ससारिणश्च त्रसा स्थावराश्च ससारिण।
पृथ्वी जल ज्वलन वायुर्वनस्पति स्थावरा ज्ञेया ॥२॥

अन्वय.—मुत्ता य संसारिणो जीवा, तस्स य थावरा संसारी, पुढवी-जल-जलण-वाउ-वणस्सई थावरा नेया ॥२॥

शब्दार्थ

मुत्ता = मोक्ष मे गये हुए	पुढवी = पृथ्वीकाय-मिट्टी पत्थरादि
य = और	जल = अपकाय,-जलकाय,-पानी
संसारि-णो = संसार मे फिरने वाले	जलण = तेउकाय,-तेजकाय, अग्नि-काय,-अग्नि,-आग
जीवा = जीव	वाउ = वायुकाय,-वायु
तस्स = त्रस	वणस्सई = वनस्पतिकाय
थावरा = स्थावर	नेया = जानना चाहिये
संसारी = संसारी-संसारमें फिरनेवाले	

गाथार्थ

मोक्ष मे गये हुए और संसार में फिरने वाले [दो प्रकार के] जीव [हैं] त्रस और स्थावर संसारी [जीव] पृथ्वी-पानी-अग्नि-वायु और वनस्पति स्थावर१ [जीव] जानना चाहिये ॥२॥

विवेचन

जैन शास्त्रो में जीवों के भेद अनेक अपेक्षाओ से अनेक

१—श्री ठाणाग सूत्र मे इन पांच स्थावरों के नाम अनुक्रम से इस प्रकार वर्णन किये हैं :—

(१) इन्द्र स्थावर काय (२) ब्रह्म स्थावर काय (३) शिल्प स्थावर काय (४) समति स्थावर काय (५) प्रजापति स्थावर काय।

प्रकार के किये गए हैं जिन मे से कुछ गाथा २४ के विवचन के फुट नोट मे दिये जावगे ।

किन्तु प्राथमिक अभ्यासियों को समझाने के लिये लोक व्यवहार में प्रसिद्ध भेदो की अपेक्षा इस गाथा मे जीवों के मुख्य दो भेद कहे हैं —(१) मुक्त और (२) ससारी ।

ससारी जीवो के दो भेद कहे हैं—(१) त्रस और (२) स्थावर। एव स्थावर जीवों के पांच भेद हैं —पृथ्वीकाय, अपूकाय, तेऊकाय, वायुकाय और वनस्पतिकाय।

१-हम इस जगत म—हाथी, गौ, भैंस, गधा, कुत्ता घोडा, बकरी आदि पशु, मोर, तोता, कबूतर, चिड़िया आदि पक्षी, मछली, मक्खी, मकोडा, चींटी, खटमल आदि जन्तु, तथा अनेक प्रकार की वनस्पतियां वगैरह अनेक जीवों को देखते हैं। ऐसे सब जीव मिल कर इस जगत मे अनन्त हैं। इन प्रत्येक जीवों में किसी न किसी प्रकार की भिन्नता एव अभिन्नता अवश्य देखने में आती है। इस बात को समझाने के लिये इन जीवों के प्रथम मुख्य भेद करके बतलाया गया है।

२ ससारी जीव—जीवों के जो मुख्य दो भेद बतलाये गये हैं उनमे से कर्म बन्धन से बद्ध जो जीव बार बार जन्म लेते हैं और मरते हैं उनको ससारी जीव कहते हैं।

३ मुक्त जीव—जो जीव जन्म और मृत्यु की उपाधि से एक दम मुक्त हो (छूट) गये हों उन्हें मुक्त अर्थात् मोक्ष म गये हुए जीव कहते हैं।

४-त्रस जीव—जो जीव सुख अथवा दुःख के संयोगों में अपनी इच्छानुसार चल फिर सकें, भाग दौड सकें, एक स्थान से दूसरे स्थान पर आ जा सकें, ऐसी शक्ति वालों को त्रस जीव कहते हैं। जैसे मनुष्य, सिंह, घोड़ा कुत्ता, सांप, बिल्ली, बन्दर, मक्खी, कीड़ी, शंख वगैरह।

५-स्थावर जीव—जो जीव सुख अथवा दुःख के संयोगों में अपनी इच्छानुसार हट न सकें, चल फिर न सकें, वे जहाँ हों वहाँ के वहाँ ही रहें, ऐसे जीवों को स्थावर जीव कहते हैं। जैसे वृक्ष, पानी आदि।

६-पृथ्वी जीव अथवा पृथ्वीकाय जीव—कुत्ते के शरीर में आत्मा है जबतक उस कुत्ते के शरीर मे आत्मा हो तबतक उस कुत्ते के शरीर सहित आत्मा—कुत्ता जीव कहा जाता है। इसी प्रकार पृथ्वी (मिट्टी) पत्थर आदि रूप में रहा हुआ आत्मा भी पृथ्वी जीव (मिट्टी जीव) पत्थर जीव आदि कहा जाता है। जैसे कुत्ता एक प्रकार का प्राणी है वैसे ही मिट्टी भी एक प्रकार का प्राणी ही है।

(१) पृथ्वीकाय शब्द के दो अर्थ हो सकते हैं। (१) जिस जीव की काया अर्थात् शरीर पृथ्वी रूप है उस जीव को पृथ्वीकाय कहते हैं।

(२) काय—अर्थात् समूह। पृथ्वी रूप शरीरों मे रहे हुए प्राणियों—जीवों के समूह को पृथ्वीकाय कहते हैं। सर्व जीवों के समूह के मुख्य छः भेद किये गये हैं। पृथ्वी रूप समूह, पानी रूप समू

अग्नि रूप समूह, वायु रूप समूह, वनस्पति रूप समूह और त्रस रूप समूह। इन को क्रमश पृथ्वीकाय अप्काय जल काय) तेउ काय (अग्निकाय) वायु काय, वनस्पति काय एव त्रस काय भी कहते हैं। इस अपेक्षा से कायशब्द का अर्थ समूह करके छः काया बतलायी गई हैं। इस अपेक्षा से भी पृथ्वीकाय आदि नाम प्रसिद्ध हैं।

७—इस प्रकार पानी जीव, अग्नि जीव, वायु जीव, वनस्पति जीव अथवा अपकाय, तेउ काय, वायु काय, वनस्पति काय जीवों के विषय में भी समझ लेना चाहिये।

८—हम नदी या कुए में जो पानी देखते हैं, चल्हे या दीपक में जो अग्नि देखते हैं, हमें वायु का स्पर्श होता है, इसी प्रकार जो वृक्ष, पत्ते, फल, फूल आदि देखते हैं, वे सब भी कीड़ो, मकोड़ा, पशु, पक्षी, के समान ही एक प्रकार के जीव हैं। कीड़ी वगैरह चलते फिरते प्राणी हैं और पृथ्वी वनस्पति आदि चलते फिरते प्राणी नहीं हैं। इसीलिये इन्हें स्थावर कहा जाता है।

मिट्टी, पत्थर, पानी, अगारे, बिजली, वायु, वृक्ष, फल, फूल पत्ते आदि जीते जीव हैं।

प्रश्न—जीव किस को कहते हैं ?

उत्तर—जीव शब्द में "जीव्" धातु "प्राण धारण" करनेके अर्थ में आता है। प्राण दो तरह के हैं, भाव प्राण, द्रव्य प्राण। चेतना को भाव प्राण कहते हैं। पांच इन्द्रियां कान, आंख, नाक, जीभ, और त्वचा। त्रिविध बल-मनोबल, वचन बल काया बल। श्वासोश्वास और आयु ये दस द्रव्य प्राण हैं।

इस लिये इस अपेक्षा से जीव अर्थात् द्रव्य प्राण धारण करने

की अपेक्षा से शरीर धारी "संसारी जीव" एवं ज्ञानादि भाव प्राण धारण करने की अपेक्षा से "मोक्ष में गये हुए (मुक्त) जीव" समझना चाहिये।

जीव का अर्थ आत्मा लेने से संसारी जीवों के शरीर में रहा हुआ और सिद्ध अवस्था में शुद्ध स्वरूप में रहा हुआ दोनों प्रकार का शुद्ध आत्मा समझना चाहिये।

यद्यपि वास्तव में शरीर में रहा हुआ आत्मा पदार्थ ही जीव है। तो भी आत्मा सहित शरीर को भी व्यवहार से जीव कहा जाता है। आत्मा मरता नहीं। विना चेतना के अकेले जड शरीर की मृत्यु भी संभव नहीं। तो भी "मनुष्य मर गया" ऐसा व्यवहार जगत में प्रचलित है, उस-आत्मा सहित मनुष्य के शरीर को जीव मानकर; शरीर और आत्मा के जुदा होने की क्रिया को मृत्यु मानकर मनुष्य की मृत्यु का व्यवहार किया जाता है।

१-पृथ्वीकाय जीवों के भेद

*फलिह-मणि-रयण-विद्दुम,-हिंगुल-हरियाल-मण-
सिल-रसिंदा।
कणगाइ धाऊ-सेढी-वन्निय-अरणेट्टय-पलेवा ॥३॥
अब्भय-तूरी-ऊसं, मट्टी-पाहाण-जाईओ-णेगा।
सोवीरंजण-लूणाइ, पुढवी-भेयाइ इच्चाइ ॥ ४ ॥

---

*स्फटिक-मणि-रत्न-विद्रुम-हिंगुल-हरिताल-मनःशिला-रसेन्द्राः
कनकादयो धातवः खटिका वर्णिका अरनेटकः पलेवकः ॥३॥
अभ्रकं तूर्युषं मृत्तिका-पाषाणजातयोऽनेकाः।
सौवीराञ्जनलवणादयः पृथ्वीभेदा इत्यादयः ॥४॥

अन्वय —फलिह-मणि, रयण विद्रुम हिंगुल-हरियाल-मणसिल-रसिंदा, कणगाइ धाऊ सेढी-वन्निय-अरणेट्टय-पलेवा-अब्भय-तूरी, ऊस मट्टी-पाहाण अणेगा-जाईओ, सोवीरंजन-लूणाइ इच्चाइ पुढवी भेया इ ॥३-४॥

शब्दार्थ

फलिह = स्फटिक
मणि = मणि-चन्द्रकांत आदि
रयण = रत्न-वज्र कर्केतन आदि
विद्रुम = मूंगा, परवाल
हिंगुल = हिंगुल-ईंगुर सिंगरफ
हरियाल = हरताल
मणसिल = मैनसिल-मन शिला
रसिंदा = रसेन्द्र-पारा-पारद
कणगाइधाऊ = सोना आदि धातुएं
सेढी = खटिका-खड़िया
वन्निय = सोनागेरु-हरमची-लालमिट्टी
अरणेट्टय = पत्थरों के टुकड़ों से मिली हुई सफेद मिट्टी
पलेवा = पलेवक एककिस्म का पत्थर
अब्भय = अभ्रक-अबरक
तूरी = तूरी तेजतुरी फटकड़ी
ऊस = क्षार-ऊसर भूमि शोरा
मट्टी-पाहाण = मिट्टी और पत्थर की
अणेगा-जाईओ = अनेक जातियाँ
सोवीरंजन = सुरमा
लूणाइ = नमक
इच्चाइ = इत्यादि
पुढवी-भेया-इ = पृथ्वीकाय जीवों के भेद हैं

गाथार्थ

स्फटिक, मणि, रत्न, परवाल, हिंगुल, हरताल, मैनसील, पारा, सोना आदि धातुएं, खड़िया, हरमची (सोना गेरु), पत्थरों के टुकड़ों से मिली हुई सफेद मिट्टी, पलेवक, अबरक, तूरी (फटकड़ी), क्षार, मिट्टी

और पत्थर की अनेक जातियां, सुरमा, नमक, इत्यादि पृथ्वी* काय [जीवों] के भेद [हैं] ॥३,४॥

विवेचन

स्फटिक—जिससे आरपार दिखाई देवे ऐसा पारदर्शक कीमती पत्थर है, जिस के चशमें तथा प्रतिमाएँ बनती हैं।

---

* श्री प्रज्ञापना सूत्र में बादर पृथ्वीकाय के भेद निम्नप्रकार से बतलाये हैं:—

१-श्लक्षण (कोमल) २- खर (कठिन)।

(१) श्लक्षण पृथ्वी—काली, नीली, लाल, पीली, सफेद, काली लिये हुए पीली तथा धूल—ऐसे सात प्रकार की है।

(२) खर पृथ्वी—मिट्टी, कंकर, बालू (रेत) पत्थर, शिला, नमक, क्षार, लोहा, तांबा, रांगा, सीसा, चाँदी, सोना, हीरा, हरताल, शिंगरफ, मनसिल, पारा, सुरमा, मूँगा, अभ्रक, अभ्रबालुका—ये बाईस सामान्य खर पृथ्वी के भेद कहे हैं।

गोमेदक, रुचक, अंक, स्फटिक, लोहिताक्ष, मरकत, मसारगल्ल, भुजमोदक, इन्द्रनील, चन्दनमणि, गेरुक, हंसगर्भ, पुलक, सौगंधिक, चन्द्रकांत, वैडूर्य, जलकांत, सूर्यकांत ये अठारह रत्न हैं; इत्यादि अनेक प्रकार की हैं।

इसी प्रकार अन्य भी सब प्रकार के स्थावर और त्रस जीवों का विस्तृत वर्णन श्रीप्रज्ञापनाजी आदि आगमों में है। विशेष जानने की इच्छा वालों को चाहिये कि वे इन आगमादि ग्रंथों को देख कर अपनी इच्छा तृप्ति करें।

मणि—चन्द्रकांतादि मणि जो समुद्र में होते हैं।

रत्न—खानों में से निकलने वाले हीरा, पन्ना, नीलम, माणक, वज्रकर्केतन आदि।

मूंगा—परवाल लाल रंग का होता है और समुद्र में से निकलता है, इसकी अनेक चीज़ें बनती हैं।

हिंगुल—लाल रंग की होती है इस में से पारा निकलता है।

हरताल—खान में से निकलने वाली एक प्रकार की पीले रंग की विषैली मिट्टी जो कि औषध आदि एवं लिखी हुई पुस्तकों के निकम्मे अक्षर मिटा देने के काम में आती है।

मैनसील—यह भी हरताल जैसी ही विषैली वस्तु है, दवाई आदि में काम आती है।

पारा—एक प्रकार का तरल सफेद रंग का पदार्थ है यह अनाज के कोठारों में तथा अनेक प्रकार की दवाइयाँ बनाने के काम में आता है।

धातु—सोना, चांदी, तांबा, रांगा, सीसा, लोहा, जस्ता, एल्मुनियम तथा दूसरे भी अनेक प्रकार के धातु जमीन में से निकलते हैं।

खड़िया—एक प्रकार की सफेद मिट्टी जो कि पट्टी पर अक्षर लिखने के लिये तथा गाँवों में दीवालें पोतने के काम आती है।

हरमची—लाल रंग की मिट्टी कपड़ा रंगने अथवा सोनागेरु सोना रंगने के काम आती है।

अरणेट्टय और पलेवक दो प्रकार के पोचे (नरम) पत्थर होते हैं।

अबरक—यह एक चमकदार पदार्थ है, खान में से निकलता है, पाँच रंग का होता है।

तूरी-तेजुंतरी अथवा फटकड़ी—एक प्रकार की मिट्टी जिसे लोहे के रस में डालने से लोहा सोना बन जाता है। कपड़ों को पास देने की मिट्टी विशेष अथवा फटकड़ी दवाइयों में काम आती है।

क्षार अथवा ऊसर—अनेक प्रकार के खार, जैसे नौसादर, शोरा, सज्जी, धोने की खार आदि अथवा ऊसर भूमि जहाँ धान आदि बोने से न उगे।

मिट्टी—काली, सफेद, लाल, नीली, भूरी, चिकनी खुरदरी, पीली आदि अनेक प्रकार की होती है।

पत्थर—सफेद, पीले, नीले, काले, लाल, हरे, भूरे आदि कई रंगों के होते हैं।

सोवीरंजन—सफेद, काला-आंख में लगाने का सुरमा।

नमक—यह कई प्रकार का होता है जैसे सैंधव, त्रिलवन, संचल समुद्र का इत्यादि।

ये तथा इनके सिवाय और भी बहुत प्रकार के बालू, कंकर आदि पृथ्वीकाय जीवों के भेद समझना चाहिये।

प्रश्न—क्या इन सोने चांदी के गहनों में भी जीव है ?

उत्तर नहीं, जबतक सोना, चांदी खान में रहता है तबतक उस में जीव रहता है। खान से निकाल लेने पर गलाने से जीव नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार पत्थरों को खानसे निकालने तथा मिट्टियों को पैरों तले कुचलने आदि से भी जीव नष्ट होते हैं।

२—जलकाय जीवों के भेद

*भोमतरिक्खमुदग ओसा-हिम-करग-हरितणू-
महिया।
हुंति घणोदहिमाई भेया-णेगाय आउस्स॥ ५॥

अन्वय —भोम अतरिक्ख उदगं-ओसा हिम-करग हरितणू-महिया य घणोदहिमाई आउस्स [अ] णेगा भेया हुंति ॥५॥

शब्दार्थ

भोम = भूमिका	महिया = छोटे छोटे जलके कण जो बादलोंसे गिरते हैं। अथवा कोहरा।
अतरिक्ख = आकाश का	घणोदहि = घनोदधि
उदग = पानी	माइ-आइ = आदि
ओसा = ओस	[अ] णेगा = अनेक
हिम = बर्फ	भेया = भेद
करग = ओले	आउस्स = अप्काय के
हरितणू = हरित वनस्पति के ऊपर फूटकर निकला हुआ पानी	हुंति = हैं

---

*भौमांतरीक्षमुदकमवश्यायो हिम करको हरिततनुर्महिका।
भवंति घनोदध्यादयो भेदा अनेके चाप्कायस्य॥ ५॥

गाथार्थ

भूमि का और आकाश का पानी, ओस, बर्फ़, ओले, हरि वनस्पति के ऊपर फूटकर निकला हुआ पानी, छोटे छोटे जल के कण जो बादलों से गिरते हैं अथवा कोहरा तथा घणोदधि आदि अप्काय [जीवों] के अनेक भेद हैं ॥ ५ ॥

विवेचन

भूमि का पानी—कुंए के स्रोत आदि से आने वाला पानी।

आकाश का पानी—वर्षा का पानी।

हरितणू हरी वनस्पति के ऊपर पानी के बिन्दु पृथ्वी से फूटकर निकलते हैं अर्थात् खेतमें बोए हुए गेहूं आदिके बालों पर जो पानी के बूंद होते हैं।

घणोदधि —लोक में जहाँ जहाँ देवों के विमान तथा नरक पृथिवियाँ हैं उनके नीचे घणीभूत-जमे हुए घी के समान पानी है इसे घण=जमा हुआ। उदधि= समुद्र कहा जाता है।

ओस, वर्फ़, ओले कोहरा आदि को सब जानते हैं।

३—अग्निकाय जीवों के भेद

इंगाल-जाल-मुम्मुर-उक्कासणि-कणग-विज्जुमाइया
अगणि-जियाणं भेया नायव्वा निउण-बुद्धीए ॥६॥

अंगार-ज्वाला-मुर्मर-उल्काशनयः कणको विद्युदादयः।
अग्निजीवाना भेदा ज्ञातव्या निपुणबुद्ध्या ॥६॥

अन्वय —इंगाल-जाल-मुम्मुर-उक्का असणि-कणग-विज्जु-आइया अगणि जियाण भेया निउण बुद्धीए नायव्वा ॥६॥

शब्दार्थ

इंगाल = अँगार, ज्वालारहित काष्ठ की अग्नि
जाल = ज्वाला
मुम्मुर = कण्डे अथवा भरसाय की गरम राख में रहने वाले अग्निकण
उक्का = उल्कापात
असणि = आकाश में से गिरने वाली चिनगारियाँ
कणग = आकाश में से तारों के समान बरसते हुए अग्नि के कण
विज्जु = बिजली
आइया = इत्यादि
अगणि जियाण = अग्निकाय जीवों के
भेया = भेद
निउण-बुद्धीए = सूक्ष्म बुद्धि से
नायव्वा = समझने योग्य हैं

गाथार्थ

अगार, ज्वाला, कण्डे अथवा भरसाय की गरम राख में रहने वाले अग्नि कण, उल्कापात, आकाश में से गिरने वाली चिनगारियाँ, आकाश से तारों के समान बरसते हुए अग्नि के कण, बिजली इत्यादि अग्निकाय जीवों के भेद सूक्ष्म बुद्धि से समझने योग्य है।

विवेचन

उल्कापात, असनि कणग और बिजली ये आकाश में उत्पन्न होने वाली अग्नि है। इनके सिवाय सूर्यकांत मणि से तथा बांस

आदि की रगड़ से उत्पन्न होने वाली इत्यादि अनेक प्रकार की अग्नि होती है।

४—वायुकाय जीवों के भेद

उब्भामग-उक्कलिया, मंडलि-मह-सुद्ध गुंजवाया य।
घण–तणु–वायाइया, भेया खलु वाउकायस्स ॥७॥

अन्वयः–उब्भामग-उक्कलिया-मंडलि-मह-सुद्ध-गुंज-वाया-य-घण-तणु–वायाइया खलु वाउ-कायस्स भेया ॥७॥

शब्दार्थ

उब्भामग = उद्भ्रामक-ऊँचे उड़ने वाला वायु
उक्कलिया = उत्कलिका-नीचे बहने वाला वायु
मंडली = गोलाकार बहने वाला वायु
मह = महावात-आँधी
सुद्ध = शुद्ध-मंद मंद बहनेवाला वायु
गुंजवाया = गुंजवायु-जिसमें गूंजने की आवाज़ होती है
य = और
घण = घणवात-गाढा वायु
तणु = तनवात-पतला वायु
वाय = वायु
आइया = आदि
खलु = निश्चय से
वाउ-कायस्स = वायुकाय के
भेया = भेद हैं

गाथार्थ

ऊँचा बहने वाला, नीचे बहने वाला, गोलाकार

उद्भ्रामक-उत्कलिकौ-मंडलि महा (मुख)-शुद्ध-गुंज-वाताश्च।
घनवात-तनुवातादिका भेदाः खलु वायुकायस्य ॥७॥

नहने वाला, आँधी, मद बहने वाला, गुंजार करता हुआ वायु, घणवात और तनवात आदि वायुकाय जीवों के भेद हैं ॥ ७ ॥

विवेचन

उद्भ्रामक—ऊँचे बहने वाला वायु जो कि घासादि को ऊँचे चढाता है और अपने चक्कर में फिराता है, इस का दूसरा नाम "संवर्तक" वायु भी है।

उत्कलिका—नीचे बहने वाला वायु जो कि थोडी थोड़ी देर बाद बहता है, जिससे धूल में रेखाएं पडती हैं।

घनवात और तनवात—गाढ़ा वायु और पतला वायु देव विमानों एवं नारक भूमियों के नीचे रहे हुए घनोदधि के नीचे होते हैं।

५—वनस्पतिकाय जीवों के मुख्य भेद,

तथ

साधारण वनस्पति काय की व्याख्या

साहारण-पत्तेया वणस्सइ-जीवा दुहा सुए भणिया।
जैसिमणताण तणू एगा साहारणा ते उ ॥८॥

साधारण-प्रत्येका वनस्पति-जीवा द्विधा श्रुते भणिताः।
येषामनन्तानां तनुरेका साधारणास्ते तु ॥८॥

अन्वयः—सुए वणस्सइ-जीवा दुहा भणिया, साहारण-पत्तेया जेसि-अनन्ताणं एगा तणु ते उ साहारणा ॥८॥

शब्दार्थ

सुए = शास्त्र में	जेसिमणंताणं = जिन अनन्त [जीवों] का
वणस्सइ-जीवा = वनस्पति [काय] के जीव	एगा = एक
दुहा = दो प्रकार के	तणू = शरीर
भणिया = कहे हैं	ते उ = वे तो
साहारण-पत्तेया = साधारण और प्रत्येक	साहारणा = साधारण

गाथार्थ

शास्त्र में वनस्पति [काय] के जीव दो प्रकार के कहे हैं—साधारण [वनस्पति काय] और प्रत्येक [वन-स्पति काय]। जिन अनन्त [जीवों] का एक शरीर [हो] वे [जीव] तो साधारण [वनस्पति काय कहलाते हैं ॥८॥

विवेचन

पृथ्वीकाय आदि जीवों की अपेक्षा वनस्पति काय के जीवों मे बहुत तरह की विचित्रता देखी जाती है। इसकी अनेक प्रकार की अनेक जातियाँ हैं। वनस्पति जीवों के शरीरों की

श्री जै. श्वे. खरतरगच्छ भंडार

१ पृथ्वी काय २ अप्काय, ३-तेउ काय, ४-वायु काय ५-प्रत्येक वनस्पति काय

[illegible] 5 सूक्ष्म 6 अग्नि 7- [illegible]

साधारण वनस्पति काय

आलू-गाजर अद्रक-प्याज-मूला, शकरकन्दी इत्यादि ।

रचना तथा जीवन की घटनायें बहुत ही आश्चर्यकारी होती हैं। जगत की सब जीव राशियों मे से वनस्पति जीवा मे एक विचित्र भेद यह जान पडता है कि दूसरे जीवों के एक शरीर में एक आत्मा होती है किन्तु कितने ही वनस्पति जीव ऐसे होते हैं कि जिनके एक ही शरीर में अनन्त आत्माए होती हैं। इस प्रकार अनन्त आत्माओं का जो एक ही शरीर होता है वह साधारण शरीर कहलाता है। एव प्रत्यक हरेक आत्मा का प्रत्येक हरेक शरीर हो तो वह प्रत्येक शरीर कहलाता है। ऐसे प्रत्येक वनस्पति शरीर को प्रत्येक—वनस्पति काय कहते हैं।

साधारण वनस्पतिकाय जीवों के कुछ भेद

कदा-अकुर-किसलय-पणगा-सेवाल-भूमिफोडा य।
अॅल्लय-तिय-गज्जर-मोत्थ-वत्थुला-थेग पल्लका॥९॥
कोमल-फल-च सव्व, गूढ सिराइ सिणाइ पत्ताइ।
थोहरि-कुआरि-गुग्गुलि-गलोय-पमुहाइ
-छिन्नरुहा ॥ १० ॥-

कन्दा अकुरा किसलयानि पनका शवाल भूमिस्फोटाश्च।
आर्द्रकत्रिक गर्जर मुस्ता वस्तुल थग पल्यङ्क ॥९॥
कोमलफल च सर्व गूढशिराणि सिनादिपत्राणि।
थोहरी-कुमारी-गुग्गुल गडूची-प्रमुखाश्च छिन्नरुहा ॥१०॥

अन्वयः – कंदा-अंकुर-किसलय पणगा-सेवाल भूमिफोडा-अल्लयतिय गज्जर-मोत्थ-वत्थुला थेग-पल्लंका-सव्व-कोमल-फलं-च-गूढ-सिराइ-सिणाइ पत्ताइं-छिन्नरुहा-थोहरि-कुंवारि-गुग्गुलि-गलोय-पमुहा ॥९-१०॥

शब्दार्थ

कंदा = जमीकन्द-आलू-सूरन-मूली आदि
अंकुर = अंकुर।
किसलय = कोंपलें-नये कोमल पत्ते
पणगा = पाँच रंग की फुल्लि जो कि बासी अन्न में पैदा होती है
सेवाल = सिवार
भूमिफोडा = भूमि स्फोट-वर्षा ऋतु में छत्र के आकार की वनस्पति होती है
अल्लयतिय = हरे तीन (अदरक, हल्दी और कचूरक)
गज्जर = गाजर
मोत्थ = नागर मोत्था
वत्थुला = बथुआ (एक प्रकारका साग)
थेग = एक प्रकार का कन्द
पल्लंका = पालखी (साग विशेष)
सव्वं कोमल फलं = सब प्रकारके कोमल फल
च = और
गूढसिराइं = गुप्त नसों वाले
सिणाइ पत्ताइं = सन आदिके पत्ते
छिन्नरुहा = काटनेपर बो देनेसे उगे
थोहरि = थोहर
कुंआरि = घी कुआर
गुग्गुलि = गुग्गल
गलोय पमुहा = गलोय आदि

गाथार्थ

(आलू, सूरन, मूली आदि) कन्द, अंकुर, कोपलें, पाँच रंग की फुल्ली जो कि बासी अन्न पर पैदा हो जाती है, सेवार, वर्षा में पैदा होने वाली छत्राकार वन-

स्पति, तथा आर्द्र कत्रिक (हरे तीन अद्रक-हल्दी-कर्चूरक) गाजर, नागरमोत्था बथुआ, थेग (नामक कन्द) पालखी सब प्रकार के कोमल फल, गुप्त नसोंवाले सनादि के पत्ते और काटने पर बो देने से उगें (ऐसे) थोहर, घीकुआर, गुग्गल, गलोय आदि (वनस्पतियां) ॥ ९, १० ॥

विवेचन

लोक में प्रसिद्ध कुछ साधारण वनस्पतिकाय जीवों का ही मात्र यहां वर्णन किया है। अन्य प्रकार से भी शास्त्रों में ३२ साधारण वनस्पति काय का वर्णन है। इन के सिवाय बहुत से अप्रसिद्ध वनस्पति काय जीव भी हैं। एक शरीर के नाश करने से अनन्त जीवों को दुःख होता है इस लिये दवाई की दृष्टि से भी साधारण वनस्पति काय का जहां तक बन सके यतना पूर्वक उपयोग करना चाहिये, क्योंकि इसमें अपने थोड़े से स्वार्थ अथवा आनन्द के लिये दो पांच नहीं, संख्यात नहीं, असंख्यात भी नहीं परन्तु अनन्त जीवों का संहार होता है। इस लिये इनका त्याग ही करना उचित है। साधारण का दूसरा नाम अनन्तकाय भी है।

कुछ विशेष अनन्तकाय जीव

शकर कन्दी, बांस करेला, लवन वृक्ष की छाल, अमृत बेल, वज्रकन्द, शतावरी, लहसन प्याज, लवनक, अंकूर फूटा हुआ अनाज, पद्मिनी कन्द, गिरिकर्णिका, सीरीशुक, खिल्लुड, शुकर वाल, ढक, बत्थुल, पिंडालु कचालू, करेला, काकड़ासिंगी, आक,

वड़, नीम आदि वृक्षों के कोंपल इत्यादि अनन्त काय हैं।

छिन्न रुहा-गिलोय आदि को काटकर अधर लटका रखने से भी उसमे से अंकूरे फूट निकलते हैं।

प्रश्न आर्द्रक त्रिक=हरे तीन (हल्दी, अद्रक, कर्चूरक) इन को यहां पर हरा कहा, बाकी को हरा क्यों नहीं कहा?

उत्तर— यद्यपि सभी वनस्पतियां हरा होने पर ही सजीव होती हैं और सुखाने के बाद हरेक वनस्पति अचित (जीव रहित) हो जाती है तो भी आर्द्रक त्रिक को यहां पर ग्रंथकार ने जो हरा त्रिक अनन्तकाय कहा है, उस का प्रयोजन यह है कि ये तीनों सुखाने के बाद औषध रूप काम मे ले सकते हैं किन्तु दूसरी अनन्त काय वनस्पतियां सुखाकर भो काममे नहीं लेनी चाहिये। क्योंकि सुखाकर ग्रहण करने मे भी उनकी हिंसा पहले तो करनी ही पड़ती है।

साधारण वनस्पतिकाय जीवों के भेदों का उपसंहार

***इच्चाइणो अणेगे हवंति भेया अणंत कायाणं।**
तेसिं परिजाणणत्थं लक्खण मेयं सुए भणियं॥११॥

अन्वय.—अणंत कायाणं इच्चाइणो अणेगे भेया हवति, तेसि परि जाणणत्थ एय लक्खणं सुए भणियं ॥११॥

---

*इत्यादयोऽनेके भवन्ति भेदा अनन्तकायानाम्
तेषां परिज्ञानार्थं लक्षणमेतच्छ्रुते भणितम् ॥११॥

शब्दार्थ

अणंत कायाणं = अनन्तकाय [जीवों] के	तेसिं = उनको
इच्चाइणो = इत्यादि	परिजाणणत्थ = अच्छी तरह जानने के लिये
अणेगे = अनेक	एय = यह
भेया = भेद	लक्खण = लक्षण
हवंति = होते हैं	सुए-भणिय = शास्त्र में कहा है

गाथार्थ

इत्यादि अनन्त काय [जीवों] के अनेक भेद हैं। उनको अच्छी तरह से जानने के लिये ये लक्षण (निशानिया) शास्त्रों में कहे हैं ॥११॥ [सो नीचे की गाथा में लक्षण कहते हैं।]

साधारण वनस्पतिकाय के लक्षण

*गूढ-सिर-संधि पव्व सम भंगमहीरगं च छिन्न रुहं।
साहारण सरीरं तव्विवरियं च पत्तेयं ॥ १२ ॥

गूढ सिर-संधि प-पव्वं, समभंग महीरगं छिन्नरुहं-साहारणं सरीरं च तव्विवरियं पत्तेयं ॥१२॥

---

*गूढशिरा सन्धिपर्व समभङ्गमहीरक च छिन्नरुहम्।
साधारणं शरीरं तद्विपरीतं च प्रत्येकम् ॥१२॥

शब्दार्थ

गूढ़ = गुप्त हों
सिर = नसें
संधि = संधियां-जोड़
च = और
पव्वं = पर्व-गांठें
समभंगं = जिसको तोड़ने से समान टुकड़े हों
अहीरगं = जिनके तंतु न हों
छिन्न रुहं = जो काटने पर भी उगे
साहारणं = साधारण वनस्पति काय
सरीरं = शरीर
च = और
तव्विवरियं = उसके विपरीत
पत्तेयं = प्रत्येक वनस्पति काय का

गाथार्थ

[जिनकी] नसें, संधियां और गांठे गुप्त हों (देखने में न आवें) जिनको तोड़ने से समान टुकड़े हों, जो काटने पर भी उगें [ये सब] *साधारण वनस्पति काय के शरीर [होते हैं] और इसके विपरीत प्रत्येक वनस्पति काय का [शरीर है] ॥ १२ ॥

---

* साधारण वनस्पति काय छः प्रकार से उगती है

१-अग्रबीज —कोरंट, नागरवेल के समान जिनका अग्र भाग बोने से उगता है ।

२-मूल बीज—उत्पल कन्द इत्यादि जिनका मूल बोने से उगता है ।

३-स्कन्ध बीज—जिनकी डाल (शाखा) बोने से उगती है, गिलोय आदि

४-पर्व बीज—ऊख, बांस, बैतआदिके समान जिनकी गाठें बोनेसे उगती है ।

५-बीज रुह—डांगर आदि धान्य जिनके बीज बोने से उगती है ।

६-मूऽसंछेनज— सिंवाड़े आदि के समान बोए बिना उगते हैं ।

विवेचन

घीकुआर मे नसें, सधियां या गांठें होते हुए भी ऊख (गन्ने) की गांठों इत्यादि के समान स्पष्ट दिखलाई नहीं देतीं। भारके पत्ते को तोडनेसे एरड के पत्ते के समान बाके टेढ़े टुकडे न होकर सीधे दो टुकड़े हो जाते हैं। शकरकदी आदि तोडने से गवार के समान ततु मालूम नहीं होवे। गिलोय आदि को काट कर यदि अधर भी लटका दिया जावे तो भी वह बढ़ती है। तथा जिस प्रकार चाक को तोडने से फडक जाता है वैसे साधारण वनस्पति काय को तोडने से झट फडक जाती है।

सारांश यह है कि—प्रत्येक वनस्पतिकाय के जीवों के शरीर के गठन से साधारण वनस्पतिकाय के जीवों के शरीर का गठन भिन्न प्रकार का होता है, क्योंकि साधारण वनस्पति काय जीवों के एक शरीर में अनन्त जीव होने से उनके शरीर का गठन अधिक नाज़ुक, अधिक जड तथा बहुत जीवों के कारण जल्दी जन्म प्राप्त करने वाला होता है एव देरी से मरने वाला होता है, यह बात स्वाभाविक है।

प्रत्येक वनस्पति काय का लक्षण और भेद

एग सरीरे एगो जीवो जेसि तु ते य पत्तेया।
फल फूल छल्लि-कट्ठा मूलग पत्ताणि बीयाणि॥१३॥

एकस्मिन् शरीर एको जीवो येषा तु, ते च प्रत्येका ।
फलपुष्पछल्लिकाष्ठानि मूलकपत्राणि बीजानि ॥१३॥

अन्वयः—जेसि एग-सरीरे एगो जीवो ते तु पत्तेया य फल-फूल-छल्लि-कट्ठा-मूलग-पत्ताणि-बीयाणि ॥१३॥

शब्दार्थ

जेसि = जिनके	ते तु = वे तो
एग सरीरे = एक शरीर मे	पत्तेया = प्रत्येक
एगो जीवो = एक जीव हो	य = और
फल-फूल = फल, फूल	मूलग = मूल—जड़
छल्लि = छाल	पत्ताणि = पत्ते
कट्ठा = काष्ठ—लकड़ी	बीयाणि = बीज

गाथार्थ

जिन [वनस्पतियों] के एक शरीर में एक जीव हो वे तो प्रत्येक *[वनस्पतिकाय] हैं और [इसके सात भेद हैं] फल-फूल-छाल-काष्ठ मूल पत्ते-बीज ॥१३॥

---

*वनस्पति में—(१)प्रत्येक वनस्पतिकाय १२ प्रकार की होती है।

१-वृक्ष—आम, पीपल, बबूल, नाशपाती आदि।

२-गुच्छ—कपास, तुलसी, मिर्च आदि के पौधे।

३-गुल्म—मोगरा, कोरंट आदि के पुष्प वृक्ष।

४-लता—अशोक, चंपक आदि पुष्पों की निराश्रित लताएं।

५-वल्लि—करेले, ककड़ी, खरबूजा, काशीफल वगैरह की लताएं

६-पर्वगा—गांठे बोने से उगें। जैसे ईख, बांस आदि।

विवेचन

वनस्पतिकाय जीवो का ज्ञान करने के लिये वनस्पति शास्त्रका यदि अभ्यास किया जावे तो यह एक ऐसा विषय है जिसका उत्तरोत्तर अभ्यास करने की रुचि बढती ही जाती है। वनस्पति के शरीर की रचना, स्वभाव, उत्पत्ति नाश उपयोगिता, अवयवों की विचित्रता, वनस्पति की वृद्धि, पशु पक्षी अथवा मनुष्यों के

७-तृण—डाभ आदि।

८-वलय—केवडा, केला, सुपारी नारियल खजूर तमाल आदि वलय वाले वृक्ष।

९-हरित—साग भाजी आदि।

१०-औषधि—गेहूं, जव, बाजरा आदि।

११-जलरुह—कमल सिघाडे आदि पानी में होने वाली अनेक प्रकार को वनस्पतियां।

१२-कुहुणा—छत्रक (जो कि वर्षा ऋतु में छत्राकार साधारण काय उत्पन्न होती है वैसी प्रत्येक कायिक वनस्पतियां)

(२) किसी भी वनस्पति के १० भाग होते हैं —

मूल (जड) स्कन्द, धड, छाल शाखा काष्ठ, पत्र, पुष्प, फल, बीज
१—मूल। २—उसपर स्कन्द। ३—उसपर धड। ४—उसपर शाखाए।
५—शाखाओं में से पत्ते निकलते हैं। ६—अग्र भागमें फूल आते हैं।
७—उनमें से फल उत्पन्न होते हैं। ८—फलमें से बीज निकलते हैं।
९—बीचमें जो कठिन भाग होता है वह काष्ठ। १०—तथा काष्ठके ऊपर छाल होती है।

साथ कितनी बातों में तुलना आदि विषय बहुत ही विनोद और आनन्द दायक हैं।

हरेक वनस्पति उगते समय जब अंकुर रूप होती है तो पहले वह साधारण वनस्पति काय होती है। बाद में यदि वह प्रत्येक वनस्पति की जाति हो तो वह प्रत्येक हो जाती है एवं साधारण वनस्पति की जाति हो तो साधारण ही रहती है। तथा कितनी एक ऐसी वनस्पतियां हैं कि उनका मूल (जड़) तो साधारण होता है और बाकी का भाग प्रत्येक होता है। किसी का कन्द साधारण होता है तो बाकी का भाग प्रत्येक होता है।

हम वनस्पति अनेक प्रकार की देखते हैं। वृक्ष, पौधा, लता, भूमिके साथ चिपट कर लगी हुई घास, गांठ गांठ रूप लगी हुई। किसीके कांटे किसी के फूल और किसी के फल होतेहैं। किसी का वृक्ष छोटा और फल बड़ा, किसी का वृक्ष बड़ा और फल छोटा, कोई पानी में ही उगती है और कोई पृथ्वी में। इस प्रकार अनेक प्रकार की वनस्पति देखने में आती है।

समूचे वृक्ष का एक अलग जीव होता है और फल फूल आदि के अलग अलग जीव होते हैं।

साधारण वनस्पतिकाय जीव एक शरीर बांध कर एक साथ ही अनन्ता उत्पन्न होते हैं।

वे आहार और श्वासोश्वास एक ही साथ लेते हैं क्योंकि इन अनन्त जीवों को एक ही शरीर होता है। अलग अलग [प्रत्येक-विशेष] शरीर नहीं होता। इस लिये वह साधारण [अनेकोंका

शरीर] कहलाता है। इसका दूसरा नाम अनन्तकाय, निगोद है। अथात् यह शरीर सब का तथा सब में से एक एक का भी माना जाता है।

समभग—अथात् मूल, कद, थड, छाल, लकडी, शाखा, पत्ते, फूल, फल तथा बीज। इन हरेक प्रकार की अनन्तकाय को तोडने से बराबर भाग होते हैं।

कुछ वनस्पतियो के एक शरीर मे एक जीव होता है। कुछ में सख्यात कुछ मे असख्यात तथा कुछ मे अनन्त होते हैं। अनन्त जीवों वाले एक शरीरको साधारण वनस्पतिकाय कहते हैं।

कुछ वनस्पतिकाय ऐसे होते हैं कि एक शरीर के भिन्न भिन्न (ऊपर गिनाये हुए मूल वगैरह) भागों मे—अमुक भाग एक जीव वाला होता है। अमुक सख्यात, अमुक असख्यात और अमुक अनन्त काय होता है।

एक शरीर मे एक जीव हो तो वह प्रत्येक वनस्पतिकाय होती है किन्तु एक मूल वगैरह हरेक भाग को आश्रित कर दूसरे असख्यात प्रत्येक वनस्पतिकाय जीव उसमे रहते हैं।

इस सारे वृक्ष का एक जीव सब में व्यापक भी होता है इस प्रकार एक वृक्षकी अपेक्षा सख्याता असख्याता तथा कोई भाग अनन्तकाय भी होता है। इससे यह अनन्त जीवोंके समूह वाला भी होता है।

सूक्ष्म स्थावर जीव

***पत्तेय तरु मुत्तुं पचवि पुढवाइणो सयललोए।
सुहुमा हवंति नियमा अंतमुहुत्ताऊ अद्दिस्सा॥१४॥**

*प्रत्येकतरु मुक्त्वा पञ्चापि पृथिव्यादयः सकललोके।
सूक्ष्मा भवन्ति नियमादन्तर्मुहूर्तायुषोऽदृश्याः॥१४॥

अन्वय.—पत्तेय तरुं मुत्तु पचवि पुढवाइणो अतमुहुत्ताऊ सुहुमा अदिस्सा सयल-लोए नियमा हवंति ॥१४॥

शब्दार्थ

पत्तेय तरुं = प्रत्येक वृक्ष को
मुत्तुं = छोड़ कर (सिवाय)
पंचवि = पांचों ही
पुढवाइणो = पृथ्वीकाय आदि
अंतमुहुत्ताऊ = अन्तर्मुहुर्त आयुष्य वाले
सुहुमा = सूक्ष्म
अदिसा = अदृश्य - देखने में नहीं आवे
सयल लोए = सम्पूर्ण लोक में
नियमा = निश्चय से—अवश्य
हवंति = होते हैं

गाथार्थ

प्रत्येक वृक्ष (प्रत्येक वनस्पतिकाय) को छोड़ कर पांचों ही पृथ्वीकाय आदि (पृथ्वी-अप्-तेऊ-वायु-साधारण वनस्पतिकाय) अन्तर्मुहूर्त आयुष्य वाले, सूक्ष्म, अदृश्य (देखने में नहीं आवें) सम्पूर्ण लोक में निश्चय से होते [ही] हैं ॥१४॥

विवेचन

इस गाथा में पृथ्वीकाय, अप्काय, तेऊकाय, वायुकाय और साधारण वनस्पति काय सूक्ष्म स्थावर जीवों का वर्णन किया है। इससे पहले तीसरी गाथा से लेकर तेरहवीं गाथा तक जिन भेदों

का वर्णन किया गया है वे सब स्थल अर्थात् बादर पृथ्वीकाय, अपूकाय तेऊकाय, वायुकाय और वनस्पति कायके भेदों का वर्णन है। वनस्पति काय जीवों के साधारण और प्रत्येक दो भेद है। स्थावर के छ प्रकारों मे प्रत्येक वनस्पति काय सूक्ष्म नहीं होती वह तो मात्र बादर ही होती है। इस लिये छ प्रकार के बादर-स्थावर जीव तथा पांच प्रकार के सूक्ष्म स्थावर जीव होते हैं। कुल मिलाकर ११ भेद हुए। इन हरेक के पर्याप्त और अपर्याप्त दो दो भेद गिनने से कुल २२ भेद हुए।

बादर—जिन जीवों का एक शरीर अथवा अनेक शरीर मिला कर चर्म चक्षु आदि इन्द्रियों द्वारा अथवा किसी भी प्रकार के यन्त्र द्वारा देखा या जाना जा सके उसे बादर कहते हैं।

सूक्ष्म—चाहे कितने भी शरीर इकट्ठे क्यों न हो जावें तो भी किसी भी इन्द्रिय द्वारा या यन्त्र की सहायता द्वारा न दिखलाई दे अर्थात् वे अदृश्य ही रहें उसे सूक्ष्म कहते हैं। सूक्ष्म जीव चौदह राजलोकमे ठांस ठांस कर भरे हुए हैं। किन्तु बादर जीव चौदह राजलोकमें ठांस ठांस कर भरे हुए नहीं होते, अमुक स्थानों में ही होते हैं।

अन्तर्मुहूर्त—९ समय का जघन्य अन्तर्मुहूर्त होता है तथा दो घड़ी (४८ मिनट) में से एक समय कम जितने काल का उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त होता है। इन दोनों के बीच के काल को मध्यम अन्तर्मुहूर्त कहते हैं।

इन पांचों ही सूक्ष्म जीवों का आयुष्य मात्र मध्यम अन्तर्मुहूर्त [कम से कम २५६ आवलिका] जितना ही होता है।

पृथ्वीकाय, अप्काय, तेऊकाय, वायुकाय इन चारों ही सूक्ष्म जीवों के एक शरीर में एक जीव होता है। और साधारण वनस्पतिकाय के सूक्ष्म भेद वाले जीवों के एक शरीर में भी अनन्त जीव होते हैं।

सामान्यतया पृथ्वीकाय आदि प्रत्येक जीव हैं क्योंकि इनके एक शरीर मे एक ही जीव होता है। इनका दूसरा भेद "साधारण" न होनेसे जुदा भेद नहीं किया गया परन्तु वनस्पति काय मे "साधारण" भेद अलग होने से इसका " प्रत्येक और साधारण" ये दो भेद जुदा जुदा बतलाए गये हैं।

स्थावर जीवके इन २२ भेदों मे से ४ भेद साधारण हैं और बाकी के १८ भेद प्रत्येक हैं। २२ में से १० भेद सूक्ष्म और १२ भेद बादर हैं। ११पर्याप्त और ११ अपर्याप्त हैं। पृथ्वीकाय के ४, अप्काय के ४, तेऊकाय ४, वायुकाय के ४, तथा वनस्पति काय के ६ भेद हैं। कुल मिलाकर २२ हुए।

प्रश्न—समय किसे कहते हैं?

उत्तर—उस सूक्ष्म काल को, जिसका कि सर्वज्ञ की दृष्टि से भी विभाग न हो सके।

प्रश्न—मुहूर्त किसे कहते हैं?

उत्तर—दो घड़ी अर्थात् अड़तालीस मिनटोंका मुहूर्त होता है।

प्रश्न—पर्याप्त जीव किसे कहते हैं?

नहीं छाने हुए पानी के एक बिन्दु में सूक्ष्म दर्शक यंत्र से ३६४५० हिलते चलते त्रस जीव दिखलाई देते हैं। इसका चित्र यहां नीचे दिया जाता है। किन्तु पानी को ही अप्काय कहते हैं।

सिध पदार्थ विज्ञान नामक पुस्तक जो कि इलाहाबाद गवर्नमेन्ट प्रेस से प्रकाशित हुई है, उसमें केप्टन स्कोर्सबी ने सूक्ष्म दर्शक यंत्र द्वारा पानी की एक बूंद (बिन्दु) में ३६४५० हिलते चलते (त्रस) जीव देखे हैं। उसी का

दो इन्द्रियों वाले जीव
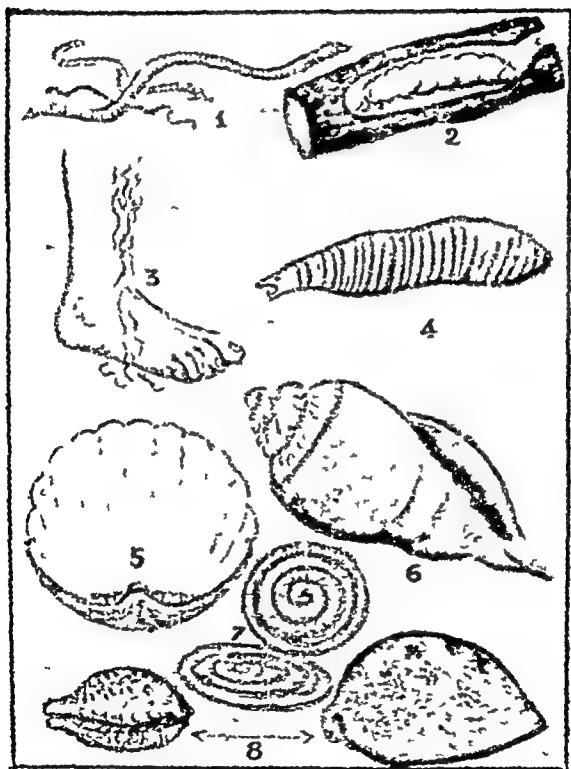
1-भूनाग 2-काष्ट का कीड़ा 3-नाहरा (वाला)
4-जोंक 5-सीप 6-शंख 7-चन्दनक 8-कोड़ी

उत्तर—जो जीव अपनी पर्याप्तियाँ पूरी कर चुका हो। उसे पर्याप्त जीव कहते हैं।

प्रश्न—अपर्याप्त जीव किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो जीव अपनी पर्याप्तियाँ पूरी न कर चुका हो।

जैसे—आहार, शरीर, इन्द्रिय और श्वासोश्वास इन चारों पर्याप्तियों को पूरी करने के बाद जो एकेन्द्रिय जीव मरते हैं उन्हें पर्याप्त तथा इन पर्याप्तियों में प्रथम की तीन पर्याप्तियाँ पूरी कर चौथी पर्याप्ति पूरी किये बिना मरें उन्हें अपर्याप्त समझना चाहिये।

सब स्थावर जीवों को एकेन्द्रिय जीव भी कहते हैं क्योंकि इन जीवों को मात्र एक स्पर्श इन्द्रिय ही होती है।

प्रश्न— पर्याप्ति किसे कहते हैं ?

उत्तर—जीव की उस शक्ति को—जिसके द्वारा जीव आहार को ग्रहण कर उसको रस रूप और रसको शरीर रूप परिणमन (रूपान्तर) करता है और इन्द्रियां बनाता है, तथा श्वासोश्वास, भाषा और मन योग्य पुद्गलों को ग्रहण कर उनको श्वासो-श्वास रूप, भाषा रूप और मन रूप बनाता है।

त्रस जीव

दो इन्द्रिय जीवों के कुछ भेद

***संख-कवड्डय-गंडुल-जलोय चंदणग अलस-लह-गाइ ॥**

मेहरि-किमि पूयरगा बेइ दिय माइवाहाइ ॥१५॥

---

*शङ्ख धपर्दको गंडोलो जलौकाश्चन्दनकालसलहकादय (लघुगाथा) मेहरक कृमय, पूतरका द्वीन्द्रिया मातृवाहिकादय ॥१५॥

अन्वयः—संख-क्वड्डय-गडुल-जलोय-चदणग-अलस-लहगाइ-मेहरि-किमि-पूयरगा-माइवाहाइ वेइंदिय ॥१५॥

शब्दार्थ

संख = शख
कवड्डय = कोडी
गंडुल = गंडोल-पेट में जो मोटे कीडे मल्हप पैदा होते हैं
जलोय = जलौका-जोंक
चंदणग = चन्दनक-अक्ष-आयरिया
अलस = भूनाग-केंचुए
लहगाइ = लालयक आदि
मेहरि = काष्ठ के कीड़े
किमि = कृमि
पूयरगा = पूरा
माइवाहाइ = मातृवाहिका आदि
वेइंदिय = दूवोन्द्रिय [जीव हैं]

गाथार्थ

संख, कौड़ो, गंडोल (पेट में पैदा होने वाले महल्प) जोंक, अक्ष, भूनाग, लालयक आदि (और) काष्ठ के कोड़े, कृमि, पूरा, मातृवाहिका इत्यादि द्वीन्द्रिय जीव हैं ॥१५॥

शंख—समुद्रादि में उत्पन्न होते हैं। चौमासे में वर्षा होने के बाद कई स्थानों में शंख के जोव चलते हुए देखने मे आते हैं। उन में सफ़ेद और बादामी रंग का जीव होता है और शंख उसकी ढाल का काम करता है। यदि कोई भय का कारण आ पड़े तो यह जीव शंख में छिप जाता है। समुद्र में छोटे-बड़े अनेक प्रकार के शंख होते

हैं। निर्जीव शख मन्दिरों में वजाने के काममें लिया जाता है।

कौडी—छोटी और बडी कई प्रकारकी होती हैं। समुद्रमें उत्पन्न होती हैं इनके जीव भी शख के जीवों समान होते हैं और ये भी भय का कारण आने पर ढाल जैसे कठिन भाग में छिप जाते हैं। निर्जीव कौडियों से बच्चे खेला करते हैं।

गडोल—पेट में मोटे कीडे उत्पन्न होते हैं उन्हें मलरूप भी कहते हैं।

जौंक—पानी मे पैदा होती है, हमारे शरीर मे से बिगडे हुए रुधिर को चूस लेती है।

अक्ष—जिसके निर्जीव शरीर को साधु लोग स्थापनाचार्य में रखते हैं।

भूनाग—केंचुए—वर्षा ऋतु में सांप सरीखे लम्बे लाल रग के जीव उत्पन्न होते हैं। जिसको अलसिया भी कहते हैं।

लालयऊ—जो बासी रोटी आदि अन्न में पैदा होते हैं।

मेहरि—काष्ठ में उत्पन्न होने वाले कीडे। लकडी में घुन लग जाता है वह कीडे।

कृमि—पेट में, फोडे में तथा बवासीर आदि में पैदा होने वाले जीव।

पूरा—पानी के कीडे जिनका मुह काला और रग लाल व श्वेत प्राय होता है।

मातृवाहिका —यह गुजरात में अधिक होती है, वहां इसे चुडेल कहते हैं। इत्यादि द्वीन्द्रिय जीव हैं।

इत्यादि शब्द से—सीप, वाला—नाहरू [मनुष्यों के हाथ पैरों से लम्बे लम्बे डोरे के समान निकलते हैं। खराब पानी पीने से ये जीव शरीर में प्रवेश करते हैं एवं बाद में लम्बे डोरे के समान बाहर निकलते हैं] आदि जन्तु और स्थल में होते हैं। द्विदल तथा कच्चे गोरस (दूध, दही, छाछ) आदि के मिश्रण से भी द्वीन्द्रिय जीव उत्पन्न होते हैं।

इनको स्पर्शना (चमड़ी) और रसना (जीभ) ये दो इन्द्रियां होती हैं।

त्रीन्द्रिय जीवों के कुछ भेद

***गोमी-मंकण-जूआ, पिपीलि-उद्देहिया य मक्कोडा।**
इल्लिय-घय-मिल्लीओ, सावय-गोकीड-जाइओ ॥१६॥
गद्दहय-चोरकीडा, गोमय कीडा य धन्नकीडा य ।
कुंथु-गोवालिय-इलिया तेइंदियइंदगोवाइ ॥१७॥

---

* गुल्मी मत्कुणयूक् पिपील्यूपदेहिका च मत्कोटकाः
ईलिका घृतोलिकाः सावा गोकीटक जातयः ॥१६॥
गर्दभक चौरकीटा गोमय-कीटाश्च धान्य-कीटाश्च
कुन्थुगोपालिका ईलिका त्रीन्द्रिया इन्द्रगोपाद्यः ॥१७॥

अन्वय —गोमी-मकण-जूआ-पिपीलि-उद्देहिया-मक्कोडा-इल्लिइ-घयमिल्लोओ-सावय गोकीड- जाइओ। गद्दहय-चोरकीडा-गोमय कीडा-य-धन्नकीडा-कुंथु-गोवालिय इलिया-इ दगोवाइ तेइंदिय ॥१६-१७॥

शब्दार्थ

गोमी = कानखजूरा	गोकीडजाइओ = गोकीटकी जातियां
मकण = खटमल	गद्दहय = गदभक
जूआ = यूका-जूं लीख	चोर कीडा = विष्टा के कीडे
पिपीलि = पिपीलिका-चींटी-कीडी	गोमयकीडा = गोबर के कीड
उद्देहिया = दीमक उदाही उदेही	धन्नकीडा = धान्य कीट अनाजके कीडे घुन
मकोडा = मकोडा चींटा	कुंथु = एक प्रकार का कीडा
इल्लिअय = इल्ली नाज में उत्पन्न होनेवाला जीव-लट	गोवालिय = गोपालिका
घयमिल्लोओ = घृतलिका घी में उत्पन्न होनेवाला जीव	इलिया = इलिका घरमुली
सावय = सावा चमयूका	इंदगोवाइ = इन्द्रगोप इत्यादि
य = तथा, और एव	तेइंदिय = त्रीन्द्रिय [जीव हैं]

गाथार्थ

कानखजूरा, खटमल,जूं लीख चीटी, दीमक मकोडा ,इल्लीय (लट) घृतेलिका, चर्मयूका और गोकीट की जातिया, गर्दभक विष्ठा के कीडे, गोवर

के कीड़े, घुन, कुंथु, गोपालिका, मुरसली एवं इन्द्रगोप इत्यादि त्रीन्द्रिय [जीव हैं] ॥१६—१७॥

कानखजूरा—बहुत पैरों वाला लम्बा होता है।

खटमल—लाल रंग के छोटे-छोटे जीव जो खाट और बिछौने आदि में पैदा हो जाते हैं। उस खाट आदि पर सोने वाले को काटते हैं और उसके शरीर का रुधिर पीते हैं।

जूं—माथे की काली और कपड़े की सफेद तथा लीख, लाल छोटी, बड़ी आदि जूएं होती हैं; जो शरीर के मैल से उत्पन्न होकर मनुष्य के सिर और कपड़े आदि में पैदा हो जाती है।

चींटियां—लाल, काली, छोटी बड़ी आदि।

दीमक—भूमि में अपनी रानी के प्रतिनिधित्व में नगर बसा कर रहती हैं एवं काष्ठ, कागज, कपड़े आदि को खा जाती है।

मकोड़ा—चींटे

इल्ली-लट—चावल वगैरह में पैदा होती है।

घृतेलिका—घी में पैदा होने वाले जीव।

चर्मयूका—बालों के मूल में उत्पन्न होकर शरीर में चिपटी रहती हैं, भावी कष्ट को सूचित करने वाली हैं।

गोकीट की जातियां—पशुओं के कान आदि में पैदा होने वाले जीव।

गर्दभक—गौशाला आदि की गीली भूमि में पैदा होने वाले सफेद रंग के कीड़े।

तीन इन्द्रियों वाले जीव
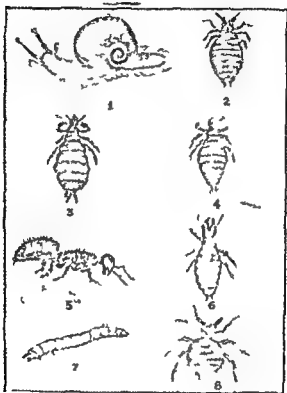
1-इन्द्रगोप	2-गोकीट
3-ज काली	4-सफेद जूँ
5-मकोड़ा	6 दीमक
7-इयल	8 खटमल

चार इन्द्रियों वाले जीव
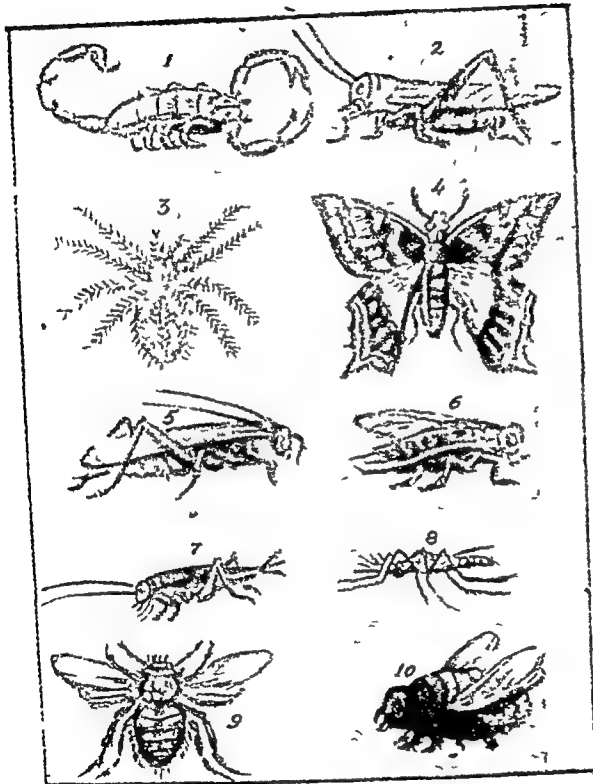
1-बिच्छु 2-टिड्डी 3-मकड़ी 4-तीतली -खड़गा[illegible]ड़ी
6-मक्खी 7-टिड्ड 8-मच्छर 9-बग 10-भौंरा

विष्टा के कीडे—विष्टे मे पैदा होते हैं, ये जमीन मे मुख से बड़े-बड़े गोल छेद करते हैं।

कुन्थु—बहुत ही सूक्ष्म जीव होते हैं।

अनाज के कीडे—गेहू आदि मे पैदा होने वाले लाल रग के छोटे-छोटे जीव।

गोपालिका—एक प्रकार का अप्रसिद्ध जीव।

सुरसली—चावल आदि अनाज मे अथवा खाड, गुड आदि मे उत्पन्न होने वाले एक प्रकार के क्षुद्र जीव।

इन्द्रगोप—वर्षा काल के प्रारम्भ में लाल रग का जीव पैदा होता है। इसे लोग इन्द्र की गाय--गुजरात में गोकल गाय तथा पजाबी में चीच च्होटी कहते हैं।

इनके अतिरिक्त दूसरे भी अनेक तीन इन्द्रियों वाले जीव है। इनको स्पर्शन रसन तथा घ्राण (नाक) ये तीन इन्द्रियां होती हैं।

चतुरिन्द्रिय जीवों के कुछ भेद

***चउरिंदिया य विच्छू ढिकुण भमरा य भमरिया तिड्डा**
मच्छिय-डसा-मसगा,कसारी-कविल-डोलाइ ॥१८॥

---

*चतुरिन्द्रियाश्च वृश्चिको ढिङ्कुणा भ्रमराश्च भ्रमरिकास्तिड्डाः
मक्षिका दंशा मशका कसारिका कपिलडोलकादयः ॥१८॥

अन्वय — विच्छू-ढिंकुण, भमरा, भमरिया तिड्डा य, मच्छिय, डंसा, मसगा, कंसारी, कविल, य, डोलाइ- चउरिंदिया ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

विच्छू = विच्छू
ढिंकुण = ढिंकुण (खटमल आदि में पैदा होता है)
भमरा = भ्रमर-भौंरा
भमरिया = भ्रमरिका, बर्रें, ततैया
तिड्डा = टिड्डी-टीड़ी
मच्छिय = मक्षिका, मक्खी मधुमक्खी
डंसा = डांस
कंसारी = कसारिका (यह उजाड़ जगह में पैदा होती है)
मसगा = मच्छर
कविल = मकड़ी
डोलाइ = डोलक, खड़ माकड़ी, हरे रंग की टिड्डी
चउरिंदिया = चार इंद्रियों वाले जीव है।

गाथार्थ

विच्छू, ढिंकुण, भौंरा, बर्रें, टिड्डी तथा मक्खी-मधुमक्खी, डांस, मच्छर, कंसारिका, मकड़ी; डोलक (हरे रंग की टिड्डी) आदि चार इन्द्रियों वाले (चतुरिन्द्रिय) [जीव हैं] ॥ १८ ॥

विवेचन

इस गाथा में बतलाए हुए सब जीव हमारे देश में प्रायः सब को ज्ञात हैं।

डोलक—टिड्डी की जाति का एक प्राणी है जो हरे रंग का होता है वर्षा ऋतुमें अधिक तर मकईके खेतों में पाया जाता है।

और मधुमक्खी के समान काटता है। इसे गुजराती में खडमाकडी कहते हैं।

आदि शब्द से—पतग, पिस्सु, सोवली, खद्योत, उड़ने वाले कीड़े आदि अनेक प्रकार के चार इन्द्रियों वाले जीव हैं। इन जीवों को स्पर्शन, रसन, घ्राण तथा चक्षु (आंख) ये चार इन्द्रियां होती हैं।

दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय तथा चार इन्द्रिय जीवों के भेद गाथाओं में थोड़े से बतला दिये गये हैं परन्तु इन के सिवाय और भी अनेक प्रकार के ये जीव होते हैं।

दो इन्द्रिय जीवों को प्राय पैर नहीं होते। तीन इन्द्रिय जीवों को ४-६ या इस से भी अधिक पैर होते हैं। चार इन्द्रिय जीवों को ६ ८ या इस से भी अधिक पैर होते हैं। पांच इन्द्रिय (जिनके भेद अगली गाथाओं में बताए जायेंगे) २ या ४ पैर होते हैं। सांप, मछली आदि के पैर नहीं होते।

अथवा मुह में आगे दो बाल हों तो तीन इन्द्रिय तथा सींग के समान दो बाल हों तो चार इन्द्रिय जीव की पहिचान करने के लिये निशानी है।

इन तीनों (दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय) को विकलेन्द्रिय भी कहते हैं। ये पर्याप्त और अपर्याप्त दो दो प्रकार के होते हैं। अत इसके ६ भेद हुए। २२ स्थावर तथा ६ विकलेन्द्रिय कुल २८ भेद हुए।

पञ्चेन्द्रिय जीवों के भेद

***पंचिंदिया य चउहा, नारय-तिरिया-मणुस्स देवाय**
नेरइया सत्तविहा, नायव्वा पुढवी-भेएणं ॥१६॥

अन्वयः—य पंचिंदिया चउहा-नारय-तिरिया-मणुस्स य देवा, पुढवी भेएण नेरइया सत्तविहा नायव्वा ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

पंचिंदिया = पांच इन्द्रियों वाले	तिरिया = तिर्यंच
चउहा = चार प्रकार के	मणुस्स = मनुष्य
नारय = नारक	देवा = देव
पुढवी भेएणं = पृथ्वी के भेद से	सत्तविहा = सात प्रकार के
नेरइया = नरक मे रहने वाले जीव	नायव्वा = जानना

गाथार्थ

और पांच इन्द्रियों वाले [जीव] चार प्रकार के [हैं]:- नारक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव। पृथ्वी के भेद से नरक में रहने वाले जीव सात प्रकार के जानना ॥१६॥

विवेचन

हम मनुष्य हैं। गाय, भैंस, बकरी, हाथी, घोड़ा आदि पशु

---

*पञ्चेन्द्रियाश्च चतुर्धा, नारकास्तिर्यञ्चो मनुष्य देवाश्च।
नैरयिकाः सप्तविधा ज्ञातव्याः पृथ्वी भेदेन ॥१६॥

नरक दु ख दिग्दर्शने
जयपुर
निरलाघन (इन्द्रियछेदन) का फल
जलचर जीवों को मारने का फल
झूठी दस्तावेज (कूटलेख) का फल
मद्यपान (शराब पीने) का फल
माता पिता से द्रोह करने का फल

नरक दुःख दिग्दर्शन सं० १९६०,

शिकार खेलने का फल

वैश्या गमन का फल

कन्या को पैसा लेने का

कबूतर, तोता, चील, कौआ, चिड़िया आदि पक्षी, मछली, मगर, मेंढक, कछुआ आदि पानी में रहने वाले जीव हैं। ये सब पंचेन्द्रिय तिर्यंच जीव कहलाते हैं। मनुष्यों और तिर्यंचों के अच्छे कर्मों का फल भोगने के स्थान को देवलोक कहते हैं। एवं बुरे कामों का फल भोगने के स्थान को नरक भूमि कहते हैं। लोक व्यवस्था की दृष्टि से--नरक भूमियां नीचे हैं और देव लोक ऊपर हैं। नीचे नारक है उनके ऊपर उनसे कम दुःख वाले तिर्यंच हैं। और इनके साथ कुछ कम दुःख वाले और अधिक सुख वाले मनुष्य हैं तथा बहुत सुख वाले देव हो ऊपर हैं कई देव मनुष्योंसे भी नीचे हैं। गाथा मे इस प्रकारका क्रम बतलाया है।

सब जीवों के रहने के स्थान को विश्व कहते हैं। विश्व-जगत को हम लोक अथवा राज लोक कहते हैं। राज एक प्रकार का माप है। इस माप से मापने से विश्व लोक चौदह राज प्रमाण होता है। इस लिये इसका नाम चौदह राजलोक भी कहा जाता है। इन में से नीचे के सात राजमे सात नरक भूमियां हैं। इन भूमियों में नारक जीव निवास करते हैं। इस लिये ये भूमियां नरक भूमियां कहलाती हैं। नरक गति मे उत्पन्न हुए जीवों के सात पृथ्वियों (भूमियों) परसे सात भेद किये गये हैं। इस नीचे के सात राज वाले भाग को अधोलोक भी कहते हैं।

नीचे से गिनने से सातवें राज के ऊपर के पड़ अर्थात् अधोलोक के ऊपर के पड़ पर मनुष्य और तिर्यंच रहते हैं और इसके ऊपर सूर्य चन्द्र और दूसरे देव रहते हैं। मनुष्यों और

तिर्यंचों के रहने के स्थान को मध्य—तिर्छा लोक भी कहते हैं।
सूर्य, चन्द्र, तारों से ऊपर के भाग को ऊर्ध्वलोक कहते हैं।
चौदह राज के एकदम ऊपर के भाग में सिद्धशिला है। इसके
ऊपर एक योजन बाद मात्र अलोक ही आता है। पृथ्वीकाय
आदि पांच सूक्ष्म स्थावर जीव इस चौदह राजलोक में ठसाठस
भरे हैं।

चौदह राजलोक का आकार—कमर मे हाथ देकर
पैर चौड़े कर खड़े हुए मनुष्य के आकार जैसा अथवा
चपटे तले वाले गमले (श्राव) को उल्टा रख कर उसके
ऊपर ऊपर क्रमशः थाली, मृदंग और मनुष्य का मस्तक रखने
से जो आकार बनता है वैसा आकार चौदह राजलोक का है।
नीचे के गमले जैसे आकार में ७ नरक भूमियां हैं। ये सातों
भूमियां एक दूसरे के नीचे हैं, पर बिल्कुल लगी हुई नहीं हैं
किन्तु एक दूसरे के बीच में बहुत बड़ा अन्तर है। इस अन्तर
में घनोदधि, घनवात, तनवात और आकाश (खाली जगह)
क्रमशः नीचे-नीचे हैं। अर्थात् पहली नरकभूमि के नीचे
घनोदधि है। इसके नीचे घनवात है। घनवात के नीचे
तनुवात है। और तनवात के नीचे आकाश है। आकाश
के बाद दूसरी नरक भूमि है। इस दूसरी नरक भूमि और
तीसरी नरक भूमि के बीचमें भी घनोदधि आदि का वही
क्रम है। इसी तरह सातों नरक भूमियों के विषय में जानना
चाहिये। इन सातों भूमियों की लम्बाई चौड़ाई आपस में

नरक दुख दिग्दर्शन नं० ३

कुगुरु वन्दन फल

गर्भ पात का फल

दान देने से रोकने का फल

पति से झगड़े का फल

लेते समय अधिक तथा देते समय कम तोलने का फल

अति काम तृष्णा का फल
कसाईपन का फल
झूठी साक्षी का फल
पशु बली का फल
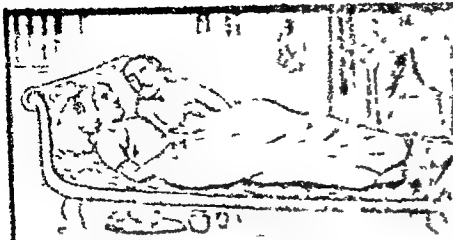
चौदह राज लोक
रत्न प्रभा पृथ्वी का
दल १८०००० योजन
सिद्ध
सिद्धशिला
अनुत्तर ५
ग्रैवेयक ९
किल्विषिक
किल्विषिक
किल्विषिक
त्रस नाडी
द्वीप समुद्र
तिरछा लोक
अधो लोक
नारक भूमियाँ
खाली १० योजन
खाली १०० योजन
आठ व्यन्तर निकाय
खाली
१० भवन पति निकाय
खाली
१००० योजन
१४
१३
१२
११
१०
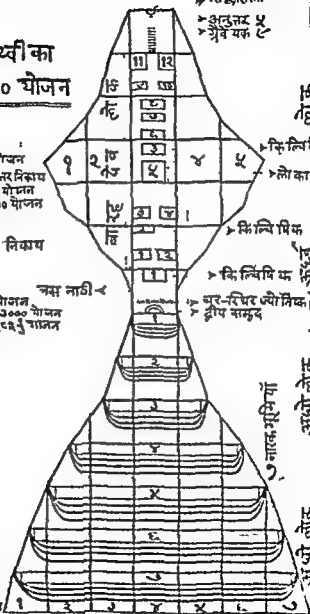
समान नहीं हैं, किन्तु नीचे नीचे की भूमि की लम्बाई चौड़ाई अधिक अधिक है। पहली भूमि एक राज, दूसरी दो राज, तीसरी तीन राज, चौथी चार राज, पाचवीं पांच राज छठी छः राज और सातवीं सात राज लम्बी चौड़ी है। ये सातों भूमियां मोटाई में भी समान नहीं है। पहली नरक पृथ्वी की मोटाई एक लाख अस्सी हजार (१८००००) योजन, दूसरी की एक लाख बत्तीस हजार (१३२०००) योजन, तीसरी की एक लाख अट्ठाईस हजार (१२८०००) योजन, चौथी की एक लाख बीस हजार (१२००००) योजन पांचवों की एक लाख अठारह हजार (११८०००) योजन, छठी की एक लाख सोलह हजार (११६०००) योजन, और सातवो की मोटाई एक लाख आठ हजार (१०८०००) योजन की है। इन पृथ्वियों में सीमंतक आदि नरक के आवास होते हैं। इनमें नारकी जीव रहते हैं। और बहुत दुःख भोगते हैं।

पापात् नरान् पाप—फलोपभोगार्थं कायन्ति=इति नारकः। सीमंतक आदि नरकवास हैं उनमें रहने वाले नारक जीवों को "नारक अथवा नारयिक कहते हैं।"

इन सात नारक राजलोकों के नाम इस प्रकार हैं - घम्मा वंसा, सेला, अंजना, रिट्ठा, मघा और माघवती। तथा घनोदधि पर स्थित इन सात पृथ्वियों के नाम—रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा, तमस्तमः प्रभा हैं।

नरक कुण्ड दिग्दर्शन नं० ५

नरक दुःख दिग्दर्शन नं० ६
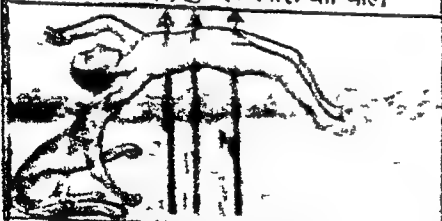
नारकी के जीव नरकावासोंमें उत्पन्न होते हैं। उनके उत्पन्न होनेका स्थान चमड़ेके कुलडे सा सकड़े मुहका और चौडे पेटका होता हैं। उसे कुम्भी कहते हैं। वे नपुसक वेद वाले होते हैं। स्त्री, पुरुष नारकोंमे होते ही नहीं। वहां काम वासना का उदय प्रबल होता है परन्तु उतना ही वहां साधनोंका सर्वथा अभाव होता है। उनमेसे प्राय जीवोंको पिछले जन्मका ज्ञान होता है परन्तु वे उसका उपयोग पिछले जन्मोके कर्मो का पश्चात्ताप करनेके सिवाय कुछ भी नहीं कर सकते। सब जीवोंके भाव पश्चा त्ताप करनेके भी नहीं होते। पूर्व जन्मके प्रबल पापके उदयसे इनका यहां जन्म होता है। प्रबल पापोंको भोगनेके लिये ही यह स्थान है इनकी आयुष्य बहुत लम्बी होती है। दु ख भोगनेके लिये ही इनका जन्म है। देवभूमिके सुखसे सर्वथा विपरीत स्थिति नारकीके जीवोंकी और स्थानकी है। इच्छा होनेपर और प्राप्त करनेके लिये चेष्टा करने पर भी खानेको नहीं मिलता। प्यास कम नहीं होती। वहा सर्दी इतनी अधिक होती है कि मध्य सियाले मे हिमालयपर पडनेवाली सर्दीसे लाखों गुनी सर्दी भी उनके किसी हिसाबमें नहीं है। इसी तरह ग्रीष्म ऋतुके प्रखर तापमें खैरके अगारोंकी भट्टीमे नारकीके जीवको यदि सुलाया जावे तो शान्तिसे सो जाय। सारांश यह है कि इससे भी वहां ताप अधिक है।

इस नरकके सात विभाग है। पहले नरकसे दूसरेमे और दूसरेसे तीसरेमे ऐसे उत्तरोत्तर अधिकाधिक दु ख, भूख, प्यास,

सर्दी, गरमी और परमाधामी देवोंके त्रास हैं। परस्परमें भी वे पूर्व भवके वैर याद कर करके लड़ते हैं और मार खाते हैं। कर्मके तीव्र- बन्धनसे बंधे हुए वे जीव नरकायु पूर्ण करके वापिस मनुष्यादि गतिमें आते हैं।

पांच इन्द्रिय तिर्यंच जीवों के भेद

*जलयर-थलयर-खयरा, तिविहा पंचिंदिया तिरिक्खा य।
सुसुमार-मच्छ-कच्छव, गाहा-मगरा य-जलचारी॥२०

अन्वय :—जलयर-थलयर-य खयरा-तिविहा पचंदिया तिरिक्खा सुसुमार मच्छ-कच्छव-गाहा य मगरा जलचारी ॥ २० ॥

शब्दार्थ

जलयर = जलचर, पानी में रहने वाले
थलयर = स्थलचर, भूमि पर रहने वाले
खयरा = खेचर, आकाशमें उड़ने वाले
तिरिक्खा = तिर्यञ्च
तिविहा = तीन प्रकार के
पंचिंदिया = पचेन्द्रिय, पांच इन्द्रियों वाले
सुसुमार = शिशुमार, सूंस
मच्छ = मछली
कच्छव = कछुआ
गाहा = घड़ियाल
य = और
मगरा = मगर मच्छ
जलचारी = जलमें रहने वाले जीव
य = और

---

*जलचर-स्थलचर-खचरास्त्रिविधाः पचेन्द्रियास्तिर्यञ्चश्च शिशुमारा मत्स्याः कच्छपा ग्राहा मकराश्च जलचराः ॥ २० ॥

गाथार्थ

पानी में रहने वाले, पृथ्वी पर रहने वाले, और आकाश में उडने वाले तीन प्रकार के पचेन्द्रिय तिर्य च [हैं]। सुस, मछली, कछुआ, घडियाल और मगर-मच्छ पानी में रहने वाले जीव [हैं] ॥२०॥

विवेचन

इस गाथा में तीन प्रकार के पचेन्द्रिय तिर्यंच बतलाये गये हैं। यहां पर तिर्यंच के आगे जो पचेन्द्रिय विशेषण लगाया है उसका प्रयोजन यह है कि पहले की १८ गाथाओं में जो एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय और चार इन्द्रिय आदि जीवों का वर्णन आया है वे भी सब तिर्यंच ही हैं परन्तु वे विकलेन्द्रिय तिर्य च कहलाते हैं। क्योंकि उनको सम्पूर्ण पांचों इन्द्रियां नहीं होती। "विकल" अर्थात् कम। पांच स्थावरों को एकेन्द्रिय कहते हैं, तथा दो, तीन और चार इन्द्रियों वाले जीवों को विकलेन्द्रिय कहते हैं।

सुसुमार-सुस—यह बहुत बड़ा मच्छ होता है, इसका आकार भैंस जैसा होता है और प्राय नदियों तथा समुद्र में पाया जाता है। इस गाथामें बतलाये हुए जलचरों के सिवाय और भी अनेक प्रकार के जलचर जीव हैं। शास्त्रों में कहा है कि चूड़ी और जल के आकार को छोड़कर जगत में जितने आकार होते हैं उन हरेक आकारके जलचर प्राणी मिल सकते हैं।

गुंड-ग्राह—तांत के आकार का जलचर प्राणी है, यह बलवान होता है कि हाथी को भी खेंच ले जाता है।

कितने ही जलचर जिन प्रतिमा के आकार के भी होते हैं। जिससे इनको देखकर दूसरे अनेक जलचर जीव जातिस्मरण ज्ञान प्राप्त कर सम्यग् दर्शन, सम्यग् श्रुत और देशविरति धर्म प्राप्त करते हैं।

स्थलचर तिर्यंचों के भेद

***चउपय-उरपरिसप्पा-भुयपरिसप्पा य थलयरा तिविहा।**
गो-सप्प-नउल-पमुहा बोधव्वा ते समासेणं ॥२१॥

अन्वय :—थलयरा-तिविहा-चउपय-उरपरिसप्पा-य-भुयपरिसप्पा। ते समासेण गो सप्प-नउल पमुहा बोधव्वा ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

थलयरा = स्थलचर तिर्यंच
तिविहा = तीन प्रकार के
चउपय = चतुष्पद, चार पग वाले
उरपरिसप्पा = छातीसे चलने वाले
भुयपरिसप्पा = भुजाओंसे चलनेवाले
ते = वे
समासेणं = समास से, संक्षेप से [अनुक्रम से]
गो = गाय, बैल
सप्प = सर्प, सांप
नउल = नकुल, न्योला
पमुहा = प्रमुख, आदि, इत्यादि वगैरह
बोधव्वा = जानना चाहिये

---

* चतुष्पदा उरः परिसर्पा भुजपरिसर्पाश्च स्थलचरास्त्रिविधाः
गो सर्प नकुल प्रमुखा बोधव्यास्ते समासेन ॥ २१ ॥

पचेन्द्रिय जलचर तिर्यंच
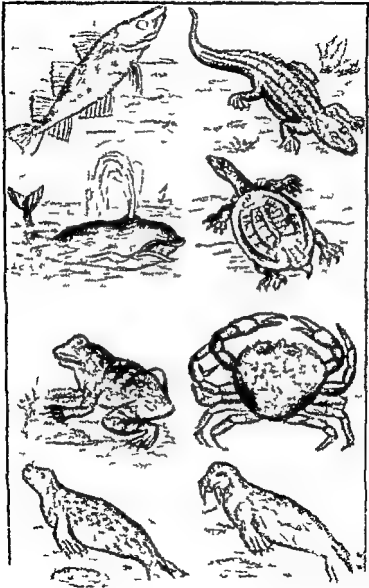
मछली, मगर, व्हेल, कछुआ, मेंढक, केंकड़ा

पंचेन्द्रिय स्थलचर तिर्यंच

गाथार्थ

स्थलचर (जमीन पर रहने वाले) तिर्यच पचेन्द्रिय जीव तीन प्रकार के हैं। चार पैरों वाले (चौपाए), छाती के बल चलने वाले, तथा भुजाओं से चलने वाले। वे सक्षेप से [अनुक्रम से] गाय बैल, साप न्योला, आदि जानना चाहिये।

विवेचन

बैल वगैरह से—हाथी, घोडा, कुत्ता भैंस, गधा, ऊँट, बकरी, बिल्ली हरिण, खरगोश, सिंह, बाघ, गोदड।

सर्प आदि से—अजगर वगैरह समझें।

न्योला आदि से—चूहा, बन्दर, रागूर, छपकली, चन्दन-गोह, साँढा, आदि समझें।

आकाश में उडने वाले पचेन्द्रिय तिर्यंच (पक्षी)

खयरा-रोमय-पक्खी-चम्मय पक्खी य पायडा चेव
नरलोगाओ बाहिसमुग्ग-पक्खी वियय-पक्खी॥२२॥

खचरा रोमजपक्षिणश्चर्मज पक्षिणश्च प्रकटाश्चैव।
नरलोकाद् बहि समुद्गपक्षिणो वितत पक्षिणः।२२।

अन्वय :—रोमय-पक्खी य-चम्मय पक्खी खयरा पायडा चेव नरलोगाओ बाहिं समुग्ग-पक्खी, वियय-पक्खी ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

रोमय-पक्खी = रोमज पक्षी, रोमसे बने हुए पंखों वाले पक्षी
चम्मय पक्खी = चमड़े से बने हुए पंखों वाले पक्षी
खयरा = खेचर
पायडा = प्रकट हैं, प्रसिद्ध हैं
चेव = निश्चय
नरलोगाओ = मनुष्य लोक से
बाहिं = बाहर
समुग्गपक्खी = समुद्ग पक्षी, डब्बे के समान सिकुड़े हुए पंख वाले
वियय पक्खी = वितत पक्षी, फैले हुए पंखोंवाले

गाथार्थ

रोमोंसे बने हुए पंखों वाले, और चमड़े से बने हुए पंखों वाले पक्षी खेचर प्रसिद्ध ही हैं। मनुष्य लोक (अढ़ाई द्वीप) से बाहर डब्बे के समान सिकुड़े हुए पंखों वाले [तथा] फैले हुए पंखों वाले [पक्षी] होते हैं ॥२२॥

विवेचन

रोमज पक्षी = कबूतर, तोता, चील, सारस, चिड़िया, हंस, गीध, कौआ, गरुड़, मोर, आदि रोम से बने हुए पंखों वाले होते हैं।

चर्मज पक्षी = चमगादड़, बादुर आदि चमड़े के पंखों वाले होते हैं।

1 रोमज पक्षी, 2 चरमज पक्षी,
3 समुद्ग पक्षी, 4 वितत पक्षी।

कर्म भूमिज मनुष्य ।

युगलिये

(अकर्म भूमिज तथा अन्तर्द्वीपज मनुष्य)

देवता
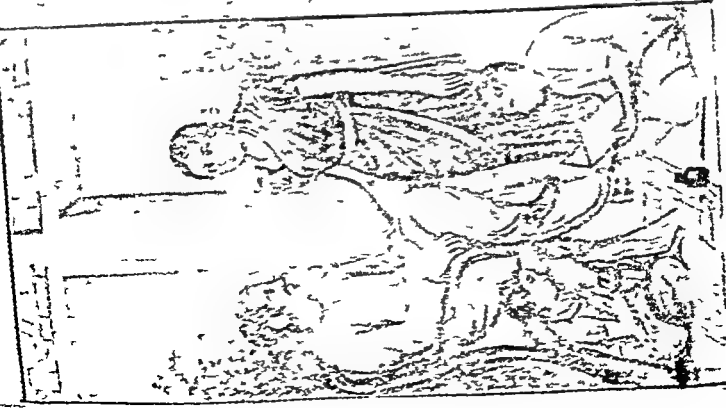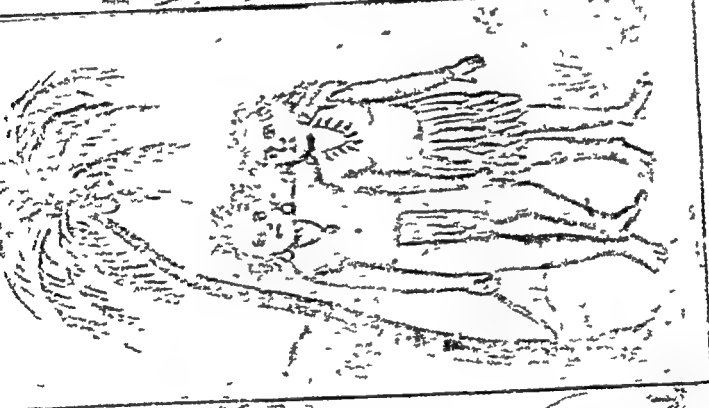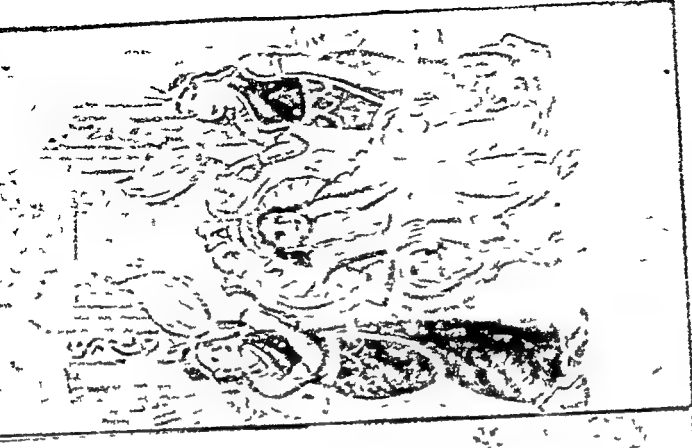
जम्बुद्वीप धातकीखंड द्वीप तथा आधा पुष्करावर्त द्वीप, इन ढाई द्वीपों में ही मनुष्य होते हैं, इस लिये इस का नाम नर लोक (मनुष्य लोक) कहा जाता है। इसके बाहर कई ऐसे पक्षी भी हैं कि जिनके उड़ते समय भी पर बन्द ही रहते हैं। और कई ऐसे भी हैं कि जिनके बैठने पर भी पर खुले ही रहते हैं। इन पक्षियों का जन्म और मृत्यु आकाश में ही होते हैं। यह बात हमारे पूर्व आचार्य परम्परा से कहते आये हैं। *

समूर्छिम और गर्भज पचेन्द्रिय तिर्यंच तथा मनुष्य

*सव्वे जल-थल-खयरा, समुच्छिमा गब्भया दुहा हुंति।
कम्मा-कम्मग-भूमि, अतरदीवा मणुस्सा य॥२३॥

अन्वय—सव्वे जल-थल-खयरा-समुच्छिमा-गब्भया दुहा-हुंति-कम्मा कम्मग भूमि य अंतरदीवा मणुस्सा ॥ २३ ॥

---

* सूचना—शिक्षक को चाहिये कि वह विद्यार्थियों को छोटे जन्तुओं से लेकर पंचेन्द्रिय तिर्यंच तक के प्राणियों को यथासम्भव दिखलावे। और वह कौन से भेद में आता है प्रश्नोत्तर द्वारा पूछे और बतलावे। ऐसे करने से इस विषय का ज्ञान स्पष्ट और दृढ़ ।

*सर्वे जल-स्थल-खचरा समूर्छिमा
कर्माकर्मभूमिजा अन्तर्द्वीपा ॥

शब्दार्थ

सव्वे = सब	दुहा = दो प्रकार के
जल = जलचर	हुंति = होते हैं
थल = स्थलचर	कम्माकम्मग भूमि = कर्म भूमिज, अकर्म भूमिज
खयरा = खेचर	अंतरदीवा = अन्तर्द्वीप में उत्पन्न
समुच्छिमा = सम्मूर्छिम	मणुस्सा = मनुष्य
गब्भया = गर्भज	

गाथार्थ

सब (हरेक प्रकार के) जलचर, स्थलचर, खेचर (जीव) दो प्रकार के-सम्मूर्च्छिम [और] गर्भज होते हैं। [तथा] कर्मभूमि, अकर्मभूमि, एवं अन्तर्द्वीप में उत्पन्न हुए मनुष्य हैं ॥ २३ ॥

विवेचन

पहले कह आये हैं कि पंचेन्द्रिय तिर्यंच के मुख्य तीन भेद-जलचर, स्थलचर और खेचर हैं। तथा स्थलचरों के तीन भेद-चतुष्पद,उरः परिसर्प (छाती से चलने वाले) और भुजपरिसर्प (भुजाओं से चलने वाले) कुल पांच भेद होते हैं यथा :—जलचर, चतुष्पद, उरः परिसर्प, भुजपरिसर्प एवं खेचर। इस गाथा में इन सब के दो दो भेद-गर्भज और सम्मूर्च्छिम बतलाए हैं। इस प्रकार दस भेद हुए तथा हरेक के पर्याप्त और अपर्याप्त भेद गिनने से पंचेन्द्रिय तिर्यंच के कुल बीस भेद हुए।

माता-पिता के सयोग से उत्पन्न होकर गर्भमे पोषण पाकर जिन जीवों का जन्म होता है वे गर्भज कहलाते हैं। गर्भज जीव तीन प्रकार से जन्म लेते हैं —जरायुज, अण्डज और पोतज। "जरायुज" वे हैं जो जरायु से पैदा हों—जैसे मनुष्य, गाय, भैंस, बकरी, घोडा आदि जाति के जीव। जरायु एक प्रकार का जाल जैसा आवरण है जो रक्त और मांस से भरा होता है उस मे पैदा होने वाला बच्चा लिपटा रहता है। "अडज" वे हैं जो अडे से पैदा होते हैं-जैसे सांप, तोता, कबूतर, चिड़िया, कौआ, बतख, मुर्गी, मोर आदि जातिके जीव। "पोतज" वे हैं जो किसी भी प्रकारके आवरण में लिपटे बिना पैदा होते हैं-जैसे हाथी, शशक, नेवला, चूहा आदि जाति के जीव।

माता पिता के संबन्ध के सिवाय कितने एक बाह्य सयोगों के मिलने पर जो जीव पैदा हो जाते हैं उन्हें "सम्मूर्छिम" और उनके जन्मको "सम्मूर्च्छिम जन्म" कहते हैं। एक इन्द्रियसे लेकर चार इन्द्रिय तकके सभी जीव सम्मूर्च्छिम ही होते हैं। औरपांच इन्द्रिय वाले पचेंद्रिय तिर्यंच सम्मूर्च्छिम और गर्भज दोनों ही प्रकार के होते हैं।

सम्मूर्छिम जीवोंकी उत्पत्ति के सामान्य प्रकार—

एकेन्द्रिय और दो इन्द्रिय जीव अपनी उत्पत्तिके योग्य सयोग मिल जाने पर अपनी स्वजाति के जीवों के आस पास पैदा हो जाते हैं।

तीन इन्द्रिय जीव स्वजातीय जीवोंके मल-विष्टा आदि में से उत्पन्न हो जाते हैं।

चार इन्द्रिय वाले जीव स्वजातीय जीवों की लार-मल आदि में से पैदा होते हैं। पंचेन्द्रिय जलचरों में मछली आदि सम्मूर्च्छिम और गर्भज दोनों प्रकार के होते हैं। भुजपरिसर्प और उरः परिसर्प भी दोनों प्रकार के होते हैं।

चूहा वगैरह पक्षी स्वजाति के मृतक शरीर मेंसे उत्पन्न हो जाते हैं।

कई बार वर्षा होने पर थोड़े समय में ही पंखों वाले दीमक जैसे जीव उड़ कर हमें तंग कर देते हैं। थोड़ी देर में उनके पंख टूट जाते हैं और उसके कुछ समय बाद वे जीव मर भी जाते हैं। वे सर्व गर्भ बिना मात्र सम्मूर्च्छिम ही पैदा होते हैं। इसी प्रकार चौमासे में अनेक जाति के सम्मूर्च्छिम जीव पैदा होते और मरते देखने में आते हैं।

गाथा १४ तक एकेन्द्रिय तिर्यंच (स्थावर) जीवों के २२ भेदों, गाथा १५ से १८ इन चार गाथाओं में विकलेन्द्रिय तिर्यंच जीवों के ६ भेदों, और २० से २३ की आधी इन ३॥ गाथाओंमें पंचेन्द्रिय तिर्यंच के २० भेदों का वर्णन किया गया है। इन सब को मिलाने से तिर्यंच जीवों के कुल ४८ भेद हुए।

मनुष्यो के भेद

मनुष्यों के मुख्य तीन भेद है—कर्म भूमिज अकर्म भूमिज अन्तर्द्वीप में पैदा होने वाले। जिस भूमिमें खेती,

व्यापार और लिखा पढ़ो, शस्त्रास्त्रादि काय होते हैं उसे कर्म-भूमि कहते हैं। ऐसी भूमि में पैदा होने वाले मनुष्य कर्म-भूमिज कहलाते हैं। कर्म-भूमियाँ पन्द्रह हैं, पांच भरत, पांच ऐरावत एवं पांच महाविदेह। जहां खेती, व्यापार तथा लिखा पढ़ो, शस्त्रास्त्रादि कर्म नहीं होते उस भूमि को अकर्मभूमि कहते हैं, ऐसो भूमि में पैदा होने वाले मनुष्य अकर्मभूमिज कहलाते हैं। *अकर्मभूमियों की संख्या तीस है। वह इस प्रकार पांच हेमवन्त, पांच एरन्यवत, पांच हरिवर्ष, पांच रम्यक, पांच देवकुरु और पांच उत्तरकुरु इनमें युगलिक मनुष्य रहते हैं।

अन्तर्द्वीप में पैदा होने वाले मनुष्य अन्तर्द्वीप वासी कहलाते हैं। अंतर्द्वीपों की संख्या छप्पन (५६) है, वह इस प्रकार —भरतक्षेत्र से उत्तर दिशा में हिमवान नामक पर्वत है वह पूर्व तथा पश्चिम दिशाओं में लवणसमुद्र तक लम्बा है। इसके पूर्व तथा पश्चिम में दो दो दंष्टाकार भूमियां समुद्र के भीतर हैं, इस प्रकार पूर्व और पश्चिम को मिलाकर चार दंष्टाएं हुई। इसी प्रकार ऐरावत क्षेत्र से उत्तर को शिखरी नाम का पर्वत है वह भी पूर्व तथा पश्चिम दिशाओं में लवण समुद्र तक लम्बा है तथा दोनों दिशाओं में दो दो दंष्टाकार भूमियां समुद्र के अन्दर चली गई हैं। दोनों

*अध्यापकों को चाहिये कि अढ़ाद्वीप के नक्शे से कर्मभूमियां अकर्मभूमियां और अन्तर्द्वीप आदि विद्यार्थियों को बतलावें।

पर्वतों को कुल मिलाकर आठ दंष्ट्राएं हुईं। हरेक दंष्ट्रामें सात सात अन्तर्द्वीप हैं। सात को आठ से गुणने से छप्पन (५६) संख्या हुई।

इन अन्तर्द्वीपों के नाम इसप्रकार है—

१ एकोरुक	८ शष्कुली कर्ण	१५ हरिमुख	२२ मेघमुख
२ अभासिक	६ आदर्शमुख	१६ व्याघ्रमुख	२३ विद्युन्मुख
३ वैपाणिक	१० मेण्ढ्मुख	१७ आसकर्ण	२४ विद्युद्दन्त
४ लांगूलिक	११ अयोमुख	१८ हरिकर्ण	२५ घणदंत
५ हयकर्ण	१२ गोमुख	१६ हस्तिकर्ण	२६ लष्टदंत
६ गजकर्ण	१३ हयमुख	२० कर्णप्रावरण	२७ गूढदंत
७ गोकर्ण	१४ गजमुख	२१ उल्कामुख	२८ शुद्धदंत

उपर्युक्त अठाइस क्षेत्र हिमवन्त पर्वत की दाढ़ाओं पर और इन्हीं नाम के २८ क्षेत्र शिखरी पर्वतकी दाढाओं पर हैं इन में युगलिक मनुष्य रहते हैं।

कर्मभूमि, अकर्मभूमि और अन्तर्द्वीप ये सब ढाई द्वीपमें हैं और इस ढाई द्वीपमें ही मनुष्य पैदा होते हैं एवं मरते हैं, इसलिये इसे मनुष्यक्षेत्र कहते हैं। इसका परिमाण पैंतालीस लाख योजन का है। अकर्मभूमियों और अन्तर्द्वीपों में जो मनुष्य जन्म लेते हैं उन्हें "युगलिया" कहते हैं। इसका कारण यह है कि स्त्री-पुरुष का युग्म (जोड़ा) साथ ही पैदा होता है और उनका वैवाहिक सम्बन्ध भी परस्पर होता है। पन्द्रह कर्म भूमियां तीस अकर्मभूमियां और छप्पन अन्तर्द्वीप; इन सब को

मिलाने से एक सौएक (१०१) मनुष्य भूमियाँ हुईं । इन मे पैदा होने से मनुष्यों के भी १०१ भेद हुए।

पचेन्द्रिय तिर्यंचों के समान मनुष्यों क जन्म भी सम्मूर्च्छिम और गर्भज दो प्रकार का होता है। गर्भज मनुष्य माता पिता के सयोग से उत्पन्न होकर गर्भ मे पोषण पाकर जन्म लेते हैं और सम्मूर्च्छिम मनुष्य गभज मनुष्य के मल, मूत्र, कफ आदि में से पैदा होते है। और वे अपनी पर्याप्तिया पूर्ण करने से पहिले अपर्याप्त अवस्था में ही मर जाते हैं।

सम्मूर्छिम मनुष्यों क पैदा होने क अशुचिस्थान इस प्रकार हैं—

१ - विष्टा मे, २—पेशाब मे, ३—कफ मे, ४ –नाक के मैल मे,-सेडा मे, ५—वमन मे, ६—पित्त में, ६ पीव राध और निगडे खून मे, ८—रुधिर में, ९—वीर्य मे, १० –त्यागे हुए वीर्य के पुद्गलों मे, ११—मुर्दा शरीर में, १२—स्त्री पुरुषों के समागममे १३—नगरके खाल मे, १४ -समस्त अशुचि स्थलों मे।

हम ऊपर मनुष्यों के जो १०१ भेद गिना आये हैं—उन हरेक के गभज और सम्मूर्च्छिम दो दो भेद हैं इसलिए २०२ भेद हुए। तथा गभज पर्याप्त और अपर्याप्त दोनों प्रकार के होते हैं तथा सम्मूर्च्छिम मात्र अपर्याप्त ही हैं। इसप्रकार मनुष्यों के कुल ३०३ भेद हुए।

देवताओं के भेद

*दसहा भवणाहिवइ, अट्ठविहा वाणमतरा हुति।
जोइसिया पचविहा,दुविहा वेमाणिया देवा ॥२४॥

---

*दशधा भवनाधिपतयोऽष्टविधा वानम तरा भवन्ति ।
ज्योतिष्का पचविधा द्विविधा वैमानिका देवा ॥२४॥

अन्वय :—भवणाहिवइ, वाणमंतरा, जोइसिया, वेमाणिया देवा-दसहा, अट्ठ-विहा, पंच-विहा, दु-विहा हुंति ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

भवणाहिवइ = भवनाधिपति
वाणमंतरा = व्यंतर
जोइसिया = ज्योतिषी
वेमाणिया = वैमानिक
देवा = देवता
दसहा = दस प्रकार के
अट्ठविहा = आठ प्रकार के
पंचविहा = पांच प्रकार के
दुविहा = दो प्रकार के
हुंति = होते हैं

गाथार्थ

भवनपति, व्यंतर, ज्योतिष्क [और] वैमानिक देवता [क्रमशः] दस प्रकार के, आठ प्रकार के, पांच प्रकार के, दो प्रकार के होते हैं ॥ २४ ॥

विवेचन*

देवोंमे सामान्य मनुष्यों की अपेक्षा ज्ञान और शक्ति विशेष होती है। तीर्थंकर देव, सामान्य केवली, और अप्रमत्त दशा

*आजकल के वैज्ञानिकों ने जगत के सब प्राणियो का वर्त्तमान प्राणी शास्त्र मे आंचल वाले, कांटेवाले पंखों वाले, अण्डे देनेवाले, बच्चे जनने वाले। इस क्रम से मात्र एकाध पद्धति से पृथक्करण किया है। जब कि जैन शास्त्रोमे प्राणीविज्ञान (जीव स्वरूप) अनेक दृष्टिबिन्दुओं से पृथक्करण करके समझाया है।

श्री जिन प्रणीत वचनों का विचार करके स्थविर भगवन्तों ने—

वाले महात्माओं की अपेक्षा तो देवोंमे, भी ज्ञान और शक्ति कम होती है। देवों के शरीर सुन्दर, निरोग, मल व पसीने से रहित और पवित्र पुद्‌गलोंके बने हुए होते हैं। उनके शरीरमे रुधिर, मांस, हाड, वगैरह नहीं होते। सुन्दर आकृति, तेजस्वी कांति, और महान् प्रतापी भव्य दृष्य, उनके पवित्र पुण्य कर्मा का प्रत्यक्ष प्रमाण है। व मनुष्यकी तरह भोजन नहीं करते, जब उनके खानेकी इच्छा होती है तब वे मनमें सकल्प करते है। सकल्प होते ही उत्तम पुद्‌गल उनके शरीरमें प्रवेश करते है, अमृत-पान के समान डकार आते हैं इससे उनकी क्षुधा शान्त हो जाती है और देहको पोषण मिलता है। मनुष्योंके समान देव गर्भसे पैदा नहीं होते। वे देवशय्यामे (सोने लायक सुन्दर बिछौनेमे) उत्पन्न होते है। जन्म होते ही सोलह वर्षकी जवान उमर-वालेके समान दिव्य रूपमें दिखते हैं।

श्री "जीवाभिगम सूत्र' में निम्न प्रकार फरमाया है—

१—जीव के दो प्रकार— मुक्त और ससारी

संसारी जीव के दो प्रकार—त्रस और स्थावर [चैतन्य स्फुरण की अपेक्षा]

२—स्थावर के तीन प्रकार—पृथ्वीकाय, अप्‌काय वनस्पति काय

त्रस जीवों के तीन प्रकार—तेऊकाय वायुकाय, उदार (बड़ा) स्त्री, पुरुष नपुसक [वेद की अपेक्षा से]

३—जीव के ४ प्रकार —नारक, तिर्यच मनुष्य, देव। [गति की अपेक्षा]

४—जीव के ५ प्रकार—एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पचेन्द्रिय। [इन्द्रियों की अपेक्षा से]

देव गूढ़े नहीं होते, असमय मे नहीं मरते, निरन्तर युवावस्था ही रहती है. छः महीने पहले उन्हें मृत्युकी खबर पड़ जाती है। उस समय उनके गलेमें जो पुष्पोंकी माला होती है, वह मुर्फा जाती है; कल्पवृक्ष चलते दिखाई देते हैं कुछ विस्मृति होती है, मुखकी कांति फीकी पडती है। देवोंमे जिन्हें आत्म मार्गको जागृति होती है वे वहाँ भी परमात्माके मार्ग की तरफ आगे बढ़ते हैं। तीर्थंकर देव व दूसरे ज्ञानियोंके पास वे जाते हैं। धर्म सुनते हैं। प्रभु-मार्गमें आगे बढ़नेवाले जीवोंको मदद करते हैं। मनके संकल्पसे कार्य सिद्ध करने की शक्ति उनमें होती है दुःखीको सुखी कर सकते हैं ज्ञानी पुरुषो का समागम कराकर धर्ममार्गमें आगे बढ़ा सकते हैं, धर्मकी उन्नति कर सकते हैं, परन्तु जिस मनुष्य की वे सहायता करें उसकी उतनी तैयारी होनी चाहिये। देव निमित्त कारण बन सकते हैं और उसके द्वारा पुण्य उपार्जन, कर

५—जीव के ६ प्रकार—पृथ्वी अप्, तेऊ, वायु, वनस्पति, त्रस [कायकी अपेक्षा से]

६—जीव के ७ प्रकार—नरक, तिर्यंच, तिर्यंचिणी, मनुष्य, मनुष्यनी, देव, देवी, [जाति के द्वन्द की अपेक्षा से]

७—जीव के ८ प्रकार—उत्पत्ति प्रथम समय के, तथा बाद के समयों के, नारक, तिर्यंच, मनुष्य, देव। [उत्पत्ति समय, और बाद के समयों की विशिष्टता को अपेक्षा से]

८—जीव के ९ प्रकार—पृथ्वो, अप्, तेऊ, वायु, वनस्पति, दो इन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिंद्रिय, पचेन्द्रिय।

मनुष्य जन्म प्राप्तकर सरलता से अपना मार्ग सुगम बना सकते हैं। देवोंकी मृत्युको च्यवन कहते हैं। मृत्यु होते ही कपूरके समान उनके शरीर पुद्गल बिखर जाते हैं। उसमें दुर्गन्ध नहीं होती है।

मनुष्योंके समान देवोंके भी स्त्रियां होता हैं। उन्हें देवी, देवांगना, अप्सरा आदि कहते हैं। काम वासना दोनोंमें होती है परन्तु स्त्रियों की तरह देवी गर्भ धारण नहीं करती। विशेष पुण्य बन्ध होने से जीव देवलोक मे जन्म लेते हैं।

देवताओंके मुख्य चार भेद हैं:—

१-भवनपति, २-व्यतर, ३-ज्योतिष्क, ४-वैमानिक।

(१) भवनपति देवताओं के दस (१०) भेद हैं —

१-असुरकुमार २-नागकुमार, ३-विद्युतकुमार, ४ सुपर्ण

---

६ —जीव के १० प्रकार—प्रथम समय और बाकी के समयों के एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय पंचेन्द्रिय। [दूसरे प्रकार से उत्पत्ति समयों की विशिष्टता]

फिर भी आचार्य सर्व जीवोंके भेद निम्नप्रकार स वर्णन करते हैं।

सब जीव

२ प्रकार से—(१) सिद्ध और संसारी (२) इन्द्रियों वाले और इन्द्रियों के बिना (३) शरीरी और अशरीरी, (४) योग वाले और योग रहित (५) वेद वाले और वेद रहित, (६) कषायवाले और कषायरहित,

कुमार, ५-अग्निकुमार, ६-वायु कुमार, ७ स्तनितकुमार. ८-उदधिकुमार, ९-द्वीपकुमार १०-दिक्कुमार।

(२ क) व्यंतर देवताओं के आठ (८) भेद हैं :—

१-किन्नर, २-किंपुरुष, ३-महोरग, ४-गान्धर्व, ५-यक्ष, ६-राक्षस, ७-भूत, ८-पिशाच।

(२ख) वाणमन्तर देवताओं के भी आठ (८) भेद हैं :—

१-अणपन्नी, पणपन्नो, ३-इसीवादी, ४-भूतवादो, ५-कंदित ६-महाकंदित, ७-कोहण्ड ८-पतङ्ग।

(३) ज्योतिष्क देवताओं के पांच (५) भेद हैं :—

१-सूर्य, २-चन्द्र, ३-ग्रह, ४-नक्षत्र, ५—तारा।

(४) वैमानिक देवताओं के दो (२) भेद हैं :—

१-कल्पोपपन्न, २-कल्पातीत।

(४ क) कल्पोपपन्न देवताओं के बारह १२ भेद हैं :—

१-सौधर्म २-ईशान, ३-सानत्कुमार, ४-माहेन्द्र, ५ -ब्रह्मलोक

---

(७) लेश्या वाले और लेश्या रहित, (८) ज्ञानी, और अज्ञानी, (९) आहारी और अनाहारी, (१०) भाषा वाले और भाषारहित, (११) साकारोपयोग वाले और अनाकारो-पयोग वाले।

३ प्रकार से—(१) सम्यग्दृष्टि, मिश्रदृष्टि, मिथ्या दृष्टि। (२) परीत ससारी अपरीत ससारी, नोपरीत नो अपरीत ससारी। (३) पर्याप्त, अपर्याप्त, नो पर्याप्त नो अपर्याप्त। (४) सूक्ष्म, बादर, नो सूक्ष्म नो बादर,। (५) सज्ञि, असज्ञि, नो सज्ञि नो असज्ञि। (६) भव्य सिद्ध, अभव्य सिद्ध, नो भव्य नो अभव्य सिद्ध। (७) त्रस, स्थावर, नो त्रस नो स्थावर।

६-लांतक, ७-महाशुक्र, ८-सहस्रार, ९-आनत, १० प्राणत
११—आरण, १२—अच्युत।

(४ ख) कल्पातीत देवताओं के १४ (चौदह) भेद हैं
नवग्रैवेयक वासी, तथा पांच अनुत्तर विमान वासी।

नव ग्रैवेयकों के नाम ये हैं —

१—सुदर्शन, २ सुप्रतिबद्ध, ३-मनोरम, ४ सर्वतोभद्र, ५ सुविशाल
६-सुमनस, ७-सौमनस्य, ८ प्रियङ्कर ९ नन्दिङ्कर

पांच (५) अनुत्तर विमानों के नाम ये हैं —

१ विजय २ वैजयन्त, ३-जयन्त, ४-अपराजित, ५-सर्वार्थसिद्धि

चारों प्रकार के देवताओं के रहने के स्थान।

(१) भवनपति —दसों प्रकार के भवनपति रत्नप्रभा नाम की प्रथम नरक पृथ्वी १८००००, योजन के मोटे थर में से ऊपर नीचे के हजार, हजार योजन छोड़ देनेसे बाकी मध्य में रहे हुए १७८००० योजन मे, तेरह थर प्रतर के बारह आंतरों में घर जैसे भवनों और मण्डपों जैसे आवासों में रहते हैं, भवनों में रहने के कारण ये देव भवनपति कहलाते हैं —

तथा ये सभी भवनपति कुमार इसलिये कहे जाते हैं कि वे

---

४ प्रकार से—(१) मनो योगी, वचन योगी, काय योगी, अयोगी। (२) स्त्री वेदी पुरुष वेदी, नपुंसक वेदी अवेदी। (३) चक्षु दर्शनी अचक्षु-दर्शनी अवधि दर्शनी केवल दर्शनी। (४) संयत, असंयत संयतासंयत नो संयत ना असंयत।

कुमार की तरह देखने में मनोहर तथा सुकुमार हैं, मृदु व मधुर गति वाले हैं एवं क्रीड़ाशील हैं।

(२) व्यंतर देवः—ऊपर कहे अनुसार रत्नप्रभा नरक भूमि के ऊपर छोड़े हुए हजार योजन के दलमें से नीचे और ऊपर के सौ, सौ योजन छोडकर बाकी बीचके आठसौ योजन में आठ व्यंतर देवों की जाति रहती है। इनके रहनेके स्थान को नगरा कहते हैं।

एवं ऊपर के छोड़े हुए सौ योजन में से ऊपर और नीचेके दस दस योजन छोड़कर बीच के अस्सी योजन में आठ वाणव्यंतर जाति के देव रहते हैं। ये अपनी इच्छा से अथवा दूसरों की प्रेरणा से भिन्न भिन्न जगह जाया करते हैं। इनमें से कुछ तो मनुष्यों की सेवा भी करते हैं।

ये देव ऊर्ध्व, मध्य और अधः – तीनों लोकों मे भवन और आवासों में भी रहते हैं। ये विविध प्रकार के पहाड़ और गुफ़ा-ओंके अन्तरों में तथा वनों के अन्तरों में वसने के कारण व्यंतर और वाणमंतर कहलाते हैं।

(३) ज्योतिष्क देवताः—तिरछा लोक के बीचोबीच मध्य में

---

५ प्रकार से—(१) नारक, तिर्यंच, मनुष्य, देव और सिद्ध। (२) क्रोधी मानी, मायी, लोभी, अकषायी।

६ प्रकार से—एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, पाँच इन्द्रिय, अनिन्द्रिय। (२) औदारिक-वैक्रिय-आहारक-तैजस-कार्मण शरीरी, अशरीरी।

मेरु पर्वत है और मेरु पर्वत के मूलमें आठ रुचक प्रदेश वाला सम भूतला नाम का एक सपाट पृथ्वी का भाग है। इस समभूतला से ९०० योजन ऊपर और ९०० योजन नीचे, इस प्रकार १८०० योजन तिर्छालोक है।

इस मे से ऊपर के ९०० योजनमे प्रकाश करने वाले ज्योतिष्क देव इसप्रकार स्थित हैं —समभूतलासे ७९० योजन की ऊँचाई पर ज्योतिश्चक्र के क्षेत्र का आरम्भ होता है, जो वहाँ से ऊँचाई मे ११० योजन परिमाण है और तिरछा असख्यात द्वीप समुद्र परिमाण है। इस ज्योतिश्चक्र की ११० योजन परिमाण ऊचाई मे सबसे पहले तारोंके विमान हैं। वहाँ से १० योजनको ऊचाइ पर सूर्य का विमान है। वहाँ से ८० योजनकी ऊचाई पर चन्द्रका विमान है। वहाँ से ४ योजन को ऊचाई पर नक्षत्रों के विमान हैं। और वहा से १६ योजन को ऊचाई पर ग्रहोंके विमान है।

ढाई द्वीप (मनुष्य लोक) मे जो ज्योतिष्क है वे सदा भ्रमण करते रहते है। उनका भ्रमण मेरु की चारों ओर होता है। इस लिये वे "चर ज्योतिष्क" कहलाते है। और मनुष्यलोकसे बाहिर

---

७ प्रकार से—(१) पृथ्वीकाय, अप्काय तेऊकाय वायुकाय, वनस्पति काय त्रसकाय, काय रहित।

८ प्रकार से—(१) नारकी तिर्यच तिर्यचिणी मनुष्य मनुष्यनी, देव, देवी, सिद्ध। (२) मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, केवलज्ञानी, मतिअज्ञानी, श्रुत अज्ञानी, विभग ज्ञानी। (३) अडज, पोतज, जरायुज, रसज, सस्वेदज, उद्भिज, सम्मूर्छिम, औपपातिक।

वे सदा स्थिर रहते हैं। इस लिये वे स्थिर कहलाते हैं। अतः ज्योतिष्क देवों के ५ चर तथा ५ स्थिर कुल दस भेद हुए।

इतने विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि भवनपति देवता अधोलोक में; व्यंतर वाणमंतर सामान्यतया तिरछे लोकके नीचे के भाग में; ज्योतिष्क ऊपर के भाग में और वैमानिक ऊर्ध्व लोक में है,वे इस प्रकार हैं:—

(४) वैमानिक देवता:—वि-मान=विचित्र प्रकार के मान (माप) वाले विमानों में उत्पन्न होने के कारण इन देवोंका नाम वैमानिक है।

ज्योतिष्क चक्र के ऊपर असंख्यात योजन चढ़ने के बाद मेरु के दक्षिण दिशा में "सौधर्म" एवं उत्तर दिशा में "ऐशान" देव लोक है। सौधर्म कल्प के बहुत ऊपर सम श्रेणि में "तीसरा" और "ऐशान" देवलोक के बहुत ऊपर सम श्रेणि मे "चौथा" देव लोक है। इन दोनों के बहुत ऊपर मध्यमें "पांचवां" और "छठा" देवलोक ऊपर ऊपर सम श्रेणिमे है। इसके बाद फिर ऊपरा ऊपर

---

६ प्रकार से—(१) एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिंद्रिय, नारकी, तिर्यंच, मनुष्य, देव, सिद्ध। (२) प्रथम समय नारक, अप्रथम समय नारक, प्रथम समय तिर्यंच, अप्रथम समय तिर्यंच, प्रथम समय मनुष्य, अप्रथम समय मनुष्य, प्रथम समय देव, अप्रथम समय देव, सिद्ध।

१० प्रकार से—(१) पृथ्वी, अप्, तेऊ, वायु, वनस्पति, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, पचेन्द्रिय, इन्द्रिय रहित (२) प्रथम समय नारकी अप्रथम समय नारकी, प्रथम समय तिर्यंच, अप्रथम समय तिर्यंच, प्रथम समय

सम श्रेणि मे "सातवां" और "आठवां" देवलोक आता है। बाद मे पहले-दूसरे और तीसरे चौथे के समान "नवमा दसमा" और "ग्यारहवां-बारहवां" देवलोक दक्षिण और उत्तर दिशा मे ऊपर २ सम श्रेणि मे स्थित है।

इन बारह कल्पोपपन्न देव लोकों में "किल्बिषिया देवों के तीन" और 'लोकांतिक देवों के नव" विमान हैं। पहिले दूसरे के नीचे, तीसरेके नीचे और छठे के नीचे इस प्रकार "किल्बिषिक" देवोंके तीन विमान है। और पांचवें देवलोक के नीचे "नवलोकांतिक देवों के" विमान हैं।

इन बारह कल्पों (देव लोकों) के ऊपर अनुक्रम से "नवग्रैवेयक देवों के' विमान ऊपर ऊपर हैं इनके ऊपर 'पांच अनुत्तर विमान" एक समान ऊंचाई पर हैं। सर्वार्थ विमान बीच मे है और बाकी के चार, चार दिशाओं मे हैं।

इनके सिवाय—व्यंतर जाति में "१० तिर्यक् जृंभक" देवों का समावेश होता है। ये तीर्थंकर प्रभु के च्यवन, जन्मादि के समय धन धान्यादि से उनके घरों को भर देते हैं। तथा नारकी जीवों को दुःख देने वाले "१५ परम अधार्मिक (क्रूर, भयंकर, पापी) देव हैं।

मनुष्य अप्रथम समय मनुष्य अप्रथम समय देव, अप्रथम समय देव, प्रथम समय सिद्ध, अप्रथम समय सिद्ध।

२४ प्रकार से— १ नारक, १० असुर कुमारादि भवनपति,

चौसठ इन्द्रः—

भवनपति के प्रत्येक निकाय में एक दक्षिण में और एक उत्तर में इस प्रकार दो दो इन्द्र रहते हैं। दस भवनपति निकायों के बीस (२०) इन्द्र हुए। इसी प्रकार व्यंतर और वाणव्यंतरों के भी एक एक निकाय के दो दो इन्द्र हैं। इसलिये दोनों प्रकार के व्यंतरों के बत्तीस (३२) इन्द्र हुए। ज्योतिश्चक्र में मात्र सूर्य और चन्द्र ये दो (२) ही इन्द्र हैं, और वैमानिक देवों के पहिले आठ देवलोकों के एक एक तथा नवमें दसवें का एक, एवं ग्यारहवें-बारहवें का एक इन्द्र हैं, इस प्रकार वैमानिक देवोंके कुल दस (१०) इन्द्र हुए चारों निकायों के कुल मिलाकर चौसठ (६४) इन्द्र हुए।

इन्द्र अर्थात् देवों का राजा। इस प्रकार राजा देव, नौकर देव आदि हमारी सामाजिक व्यवस्था (कल्प) के समान ही जिन देवों में सामाजिक व्यवस्था है वे कल्पोपपन्न (कल्प युक्त) कहलाते हैं। और जिन देवों में ऐसी व्यवस्था नहीं है, वे ग्रैवेयक और अनुत्तरदेव ही हैं। इसलिये इन्हें कल्पातीत; अर्थात् कल्परहित कहा जाता है। तीर्थंकर प्रभु के कल्याणकों में कल्पोपपन्न देव आकर महोत्सव आदि करते हैं।

---

५ स्थावर, ३ विकलेन्द्रिय, १ तिर्यंच, १ मनुष्य, १ व्यंतर, १ ज्योतिष्क, १ वैमानिक।

३२ प्रकार से—२२ प्रकार के एकेन्द्रिय, ६ प्रकार के विकलेन्द्रिय, नारक, तिर्यंच, मनुष्य, देव।

अनुत्तर और ग्रैवेयक देवों के सिवाय बाकी सब निकायों के देव कल्पोपपन्न हैं।

इस गाथा के विवेचन में देवों के १९८ भेदों का वर्णन कर दिया है, जो कि इस प्रकार है —

भेद	देव	संख्या	
१० भवनपति १५ परमाधार्मिक	भवनपति देव	२५	
८ व्यंतर ८ वाण व्यन्तर १० तिर्यक जृम्भक	व्यंतर देव	२६	
५ चर ५ स्थिर	ज्योतिष्क देव	१०	
१२ देवलोक ३ किल्विषक ९ लोकांतिक	कल्पोपपन्न देव	२४	वैमानिक देव ३८
९ ग्रैवेयक ५ अनुत्तर	कल्पातीत देव	१४	

यह भेद-पद्धति संक्षेप से दी गई है। इनके सिवाय अनेक प्रकार के भेद किये जा सकते हैं तथा जैन शास्त्रों में किये हैं, जो कि बड़े सिद्धान्त ग्रंथों से जाने जा सकते हैं। संसारी जीव के पाँचसौ तिरसठ (५६३) भेद तो इस ग्रन्थ में समझाए गए हैं।

कुल ९९ भेद हुए इन सब के पर्याप्त और अपर्याप्त दो दो भेद हैं; इसलिये देवताओं के १९८ भेद हुए।

संसारी जीवों के पाचसौ तिरसठ(५६३) भेद हुए

देवों के १९८ (गाथा नं० २४ में)

मनुष्यों के ३०३ (गाथा नं० २३ में)

तिर्यंचों के ४८ (गाथा न० २ से १८ २० से २३ मे)

नारकी के १४ (गाथा नं० १९ में)

कुल ५६३ भेद हुए।

मुक्त जीवों के भेद

*सिद्धा पनरस-भेया तित्थातित्थाइ-सिद्ध-भेएणं।
एए संखेवेणं जीव-विगप्पा समक्खाया ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

तित्थ = तीर्थंकर, जिन सिद्ध	पनरस = पंद्रह
अतित्थाइ = अतीर्थंकर, अजिन सिद्ध इत्यादि	भेया = भेद
	ए ए = ये
सिद्ध भेएणं = सिद्धों के भेदों की अपेक्षा से	जीव विगप्पा = जीव के भेद
	संखेवेणं = सक्षेप मे
सिद्धा-मोक्ष में गये हुए जीव	समक्खाया = स्पष्ट समझाये हैं

---

* सिद्धाः पञ्चदशभेदाः तीर्थातीर्थादि सिद्धभेदेन।
एते संक्षेपेण जीवविकल्पाः समाख्याताः ॥२५॥

अन्वय — तित्थ-अतित्थ-आइ-सिद्ध-भेएण सिद्धा पनरस भेया । एए जीव-विगप्पा सखेवेण समक्खाया ॥ २५ ॥

गाथार्थ

तीर्थ अतीर्थ आदि सिद्धो के भदों की अपेक्षा से सिद्ध पन्द्रह प्रकार के है ।

ये जीवो के भेद सक्षेप म स्पष्ट समझाए हैं ॥ २५ ॥

विवेचन

आठ कर्मों से अलग होकर (छूट कर) मोक्ष में गये हुए जीव 'मुक्त जीव" कहलाते हैं। मुक्त अर्थात् (कर्मों से) छूटा हुआ।

मोक्ष-कर्मों से छुटकारा। अर्थात् आत्मा के समस्त कर्म बन्धनों से छूट जाने को मोक्ष कहते है।

सिद्ध=तैयार-कर्मों से छूट कर निर्मल जीव स्वरूप तैयार हो गया हुआ। निर्वाण=ससार का बुझ जाना।

सिद्धि गति=सपूर्ण गुण प्रकट करने रूप कार्य की सफलता पाये हुए जीव जिस परिस्थिति मे रहते है वह परिस्थिति आदि मोक्ष के नाम है।

ग्रथकार ने दूसरी गाथा के पूर्वार्द्ध मे मुक्त और ससारी ऐसे दो प्रकार के जीवों के भेद बतलाए हैं। वहाँ मुक्त पहले कहा है तो भी इसका वर्णन पीछे कर यह सूचित किया है कि ससार-वास भोगने के बाद ही जीव को मुक्ति होती है मुक्त जीव सब प्रकारके सांसारिक व्यवहारसे रहित होते हैं।

क्षय किये हं सर्व कर्म जिन्होंने ऐसे (सर्व कर्म रहित) सिद्ध जीवों के पन्द्रह भेद हैं जिनका वर्णन उदाहरणों सहित नवतत्वमे किया है इस लिये नवतत्व का अभ्यास करते समय आप लोग पढ़ेंगे। यहां पर मात्र भेदोंके नाम लिख दिये जाते हैं जो कि इस प्रकार हैं :—

१-तीर्थ सिद्ध, २-अतीर्थ सिद्ध, ३-जिन सिद्ध, ४-अजिन सिद्ध, ५-गृह लिङ्ग सिद्ध, ६-अन्य लिंग सिद्ध, ७-स्वलिंग सिद्ध, ८-स्त्री लिङ्ग सिद्ध, ९-पुरुष लिङ्ग सिद्ध, १० नपुंसक लिङ्ग सिद्ध, ११-प्रत्येक-बुद्ध सिद्ध, १२-स्वयं बुद्ध सिद्ध, १३-बुद्ध बोधित सिद्ध, १४-एक सिद्ध, १५-अनेक सिद्ध।

सिद्ध पद को प्राप्त हुए सब जीवोंमें किसी भी प्रकारकी भिन्नता नहीं है इसलिये एकही भेद है, किन्तु ये पन्द्रह भेद जो कहे गये हैं; ये इन जीवों को पूर्व अवस्था की अपेक्षा से कहे हैं।

यहाँ तक--संसारी और मुक्त। संसारी के त्रस और स्थावर। स्थावर के पृथ्वी; पानी, अग्नि, वायु, एवं प्रत्येक और साधारण वनस्पति। त्रस के दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, (विकलेन्द्रिय) एवं पंचेन्द्रिय जीवोंके सात नारक-गर्भज तथा सम्मूर्छिम पाँच पांच जलचर, चतुष्पद, उरपरिसर्प, भुजपरिसर्प और खेचर तिर्यंच। कर्म भूमिज अकर्मभूमिज और अन्तर द्वीपज मनुष्य। तथा चार प्रकारके देव, एवं पन्द्रह प्रकारके सिद्ध। इस प्रकार इस जगत में जितने जीव हैं उनके भेदो को संक्षेप से स्पष्टता पूर्वक समझा दिये हैं। यों तो जीवों के असंख्यात और अनन्त भेद भी हो

सकते हैं परतु बाल जीवों को समझाने के लिये जाति द्वारा सक्षिप्त भेद कहे हैं।

जीव विचार [दूसरा विभाग]

जीवों के भेदों पर पाँच द्वार

पाच द्वारों क नाम

*एएसि जीवाण सरीरमाऊ-ठिई सकायम्मि ।
पाणा जोणि पमाणजेसि जअत्थित भणिमो॥२६॥

अन्वय — एएसि जीवाणं जेसि ज-सरीर आऊ सकायम्मि ठिई, पाणा, जोणी-पमाणं अत्थि त भणिमो ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

एएसि = इन-पूर्वोक्त	ठिई = स्थिति
जीवाण = जीवों में	पाणा = प्राण
जेसि = जिनको	जोणि = योनियों का
जं = जितना	पमाण = प्रमाण
सरीरं = शरीर	अत्थि = है
आऊ = आयु	त = उस
सकायम्मि = स्वकाय में	भणिमो = कहते हैं

---

* एतेषां जीवाना शरीरमायु स्थिति स्वकाये ।
प्राणा योनिप्रमाण येषां यदस्ति तद्भणिष्याम ॥ २६ ॥

गाथार्थ

इन [पूर्वोक्त] जीवों में जिनको जितना-शरीर, आयु, स्वकाय में स्थिति, प्राण, [और] योनियों का प्रमाण है-उसे कहते हैं।

विवेचन

शरीर से शरीर की उंचाई (लम्बाई) समझना चाहिये। शरीर की उंचाई और आयु जघन्य एवं उत्कृष्ट-दोनों प्रकार की कहेंगे। स्वकाय स्थिति, प्राण, योनियां एवं आयु संबन्धी आगे विचार करेंगे।

१—शरीर की ऊंचाई

(१) एकेन्द्रिय जीवों के शरीरकी उंचाई

***अंगुल-असंख-भागो, सरीर मेगिंदियाणं सव्वेसिं।**
जोयण-सहस्स महियं, नवरं पत्ते य-रुक्खाणं ॥२७॥

अन्वयः—सव्वेसि एगिदियाण सरीर अगुल-असंख-भागो, नवर पत्ते य-रुक्खाणं जोयण-सहस्सं-अहिय ॥२७॥

अगुलासङ्ख्येय भागः शरीर मेकेन्द्रियाणा सर्वेषाम् ।
योजन सहस्रमधिक नवरं प्रत्येकवृक्षाणाम् ॥२७॥

शब्दार्थ

सव्वेसिं = सब	पत्तेय रुक्खाण = प्रत्येक वनस्प तियों का शरीर
एगिंदियाण = एक इन्द्रिय जीवों के	नवर = परन्तु
सरीर = शरीर [की ऊंचाइ]	जोयण सहस्स = हजार योजन से
अगुल-असंख भागो = अगुली के असंख्यातवें भाग [जितना] है	अहिय = अधिक है

गाथार्थ

सब एकेन्द्रिय जीवों के शरीर [की ऊंचाई] अगुली के असंख्यातवें भाग [जितनी] हैं। परन्तु प्रत्येक वनस्पतियों का शरीर हजार योजन से [कुछ] अधिक है।

विवेचन

सभी एकेन्द्रिय जीवों का शरीर अगुल का असंख्यातवां भाग जितना है। अर्थात् एकेन्द्रिय के २२ भेदों में मात्र पर्याप्त प्रत्येक वनस्पतिकाय के सिवाय बाकी के २१ भेदों के शरीर की ऊंचाइ अगुल के असंख्यातवें भाग जितनी है। तथापि इनमें छोटे बड़े होते हैं जो कि इस प्रकार हैं —

१—सबसे छोटा शरीर-सूक्ष्म निगोद का (साधारण वनस्पति)
२—इससे असंख्यात गुणा बड़ा—सूक्ष्म वायु का
३—इससे असंख्यात गुणा बड़ा—सूक्ष्म अग्नि का
४—इससे असंख्यात गुणा बड़ा—सूक्ष्म अप् काय का
५—इससे असंख्यात गुणा बड़ा—सूक्ष्म पृथ्वी कायका

६—इससे असंख्यात गुणा वडा—वादर वायु का
७—इससे असंख्यात गुणा वड़ा—वादर अग्नि का
८—इससे असंख्यात गुणा वड़ा—वादर अपकाय का
९—इससे असंख्यात गुणा वड़ा—वादर पृथ्वी काय का
१०—इससे असंख्यात गुण बड़ा—वादर निगोद का

इस प्रकार छोटे वड़े शरीर होते हुए भी छोटे से छोटा शरीर तथा वड़ेसे वड़ा शरीर अंगुलके असंख्यातवें भाग जितना ही होता है। अंगुल के असंख्यातवें भाग के भी असंख्यात भेद हैं।

प्रत्येक वनस्पतिकाय का शरीर एक हजार योजन से कुछ अधिक कहा है—यह प्रमाण समुद्र के पद्मनाल का तथा ढाई द्वीप से वाहर की लताओं का समझें।

सूक्ष्म शरीर वहुतसे इकट्ठे होनेपर भी हम नहीं देख सकते तथा वादर शरीर इकट्ठे होनेपर देखे जा सकते हैं। एक हरे आवले प्रमाण पृथ्वी काय मे रहे हुए जीव सरसव जितना वड़ा शरीर करें तो वे जम्बूद्वीप में समा नहीं सकते। इसी प्रकार पानी के एक विन्दु के अपकाय जीव यदि कवूतर जितना शरीर करें तो वे जम्बूद्वीप में नहीं समा सकते इत्यादि।

(२) *विकलेन्द्रिय जीवों के शरीर की ऊंचाई।*

***वारस जोयण तिन्नेव, गाउआ जोयणं-च अणुक्कमसो।**
वेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिय-देह-मुच्चत्तं ॥२८॥

---

*द्वादश योजनानि त्रिण्येव गव्यूतानि योजनं चानुक्रमशः
द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय देहस्योच्चत्वम् ॥ २८ ॥

अन्वय —बेइंदिय-तेइंदिय चउरिंदिय-देह -उच्चत्त अणुकमसो बारस-जोयण, तिन्नेव गाउआ, च जोयण ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

बेइंदिय = दो इन्द्रिय	बारस = बारह
तेइंद्रिय = त्रीन्द्रिय	जोयण = योजन
चउरिंदिय = चतुरिन्द्रिय	तिन्नेव = तीन ही
देह = शरीर की	गाउआ = गव्यूत
उच्चित्तं = ऊंचाई [लम्बाई]	च = और
	अणुक्कमसो = अनुक्रम से

गाथार्थ

दो इन्द्रिय, तेइन्द्रिय, [और] चतुरिंदिय जीवों के शरीर की ऊंचाई [लम्बाई] अनुक्रम से बारह योजन, तीन गव्यूत तथा [एक] योजन है।

विवेचन

द्वीन्द्रिय जाति के जीवों का शरीर प्रमाण अधिक से अधिक बारह योजन हो सकता है इससे अधिक नहीं। इसका मतलब किसी द्वीन्द्रिय जाति से है कुल द्वीन्द्रियों से नहीं। ऐसा ही त्रीन्द्रिय जीवों का शरीर तीन कोस और चतुरिंद्रिय जीवों का शरीर प्रमाण अधिक से अधिक एक योजन होता है।

प्रश्न—योजन किसे कहते हैं ?

उत्तर—चार कोस का एक योजन होता है।

प्रश्न—गव्यूत किसे कहते हैं ?

उत्तर—एक कोस को

(३) नारकी जीवों की अवगाहना

❀धणु-सय-पंच-पमाणा, नेरइया सत्तमाइ पुढवीए।
तत्तो अद्धद्धूणा, नेया रयण-प्पहा जाव ॥२६॥

अन्वय :—सत्तमाइ-पुढवीए-नेरइया-पञ्च-सय धणु-पमाणा तत्तो जाव रयणप्पहा [जाव] अद्धद्धूणा नेया ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

सत्तमाइ = सातवीं [नरक]
पुढवीए = पृथ्वी में
नेरइया = नारकी जीवों का [शरीर]
धणु = धनुष्य
पंच-सय = पांच सौ
पमाणा = प्रमाण वाला
तत्तो = वहां से
रयण-प्पहा = रत्न प्रभा
जाव = तक
अद्धद्धूणा = आधा आधा कम
नेया = समझना

गाथार्थ

सातवीं [नरक] पृथ्वीमें नारकी जीवों का [शरीर] पांच सौ धनुष्य प्रमाणवाला [है] । वहां से रत्न प्रभा तक आधा आधा कम समझना [चाहिये]

❀पञ्चशतधनुः प्रमाणा नैरयिका सप्तम्या पृथिव्याम् ।
ततो ऽर्द्धार्द्धोना ज्ञेया रत्नप्रभां यावत् ॥२६॥

विवेचन

नारकों के नाम	धनुष्य	अंगुल
रत्नप्रभा के नारकों की ऊंचाई	७	७८
शर्करा प्रभा के ,, ,, ,,	१५	३०
वालुका प्रभा के ,, ,, ,,	३१	७४
पंकप्रभा के ,, ,, ,,	६२	४८
धूमप्रभा के ,, ,, ,,	१२५	०
तम प्रभा के ,, ,, ,,	२५०	०
तमस्तम प्रभा के ,, ,, ,,	५००	०

नरक भूमियों के जुदा जुदा थरों में (प्रतरोंमें नारक) जीव रहते हैं। इनमें प्रतर वार शरीर की ऊंचाई जुदा जुदा होती है। इसे दूसरे ग्रंथों से जानना चाहिये।

प्रश्न—धनुष्य का क्या प्रमाण है ?

उत्तर—चार हाथ का अथवा ९६ अंगुल का एक धनुष्य होता है।

(५) गर्भज तिर्यचों की ऊंचाई

*जोयण सहस्स-माणा, मच्छा उरगा य गब्भयाहुति।
धणुह पुहुत्तं पक्खिसु, भुअ-चारी गाउअ पुहुत्तं॥३०॥

---

* योजनसहस्र माना मत्स्या उरगाश्च गर्भजा भवन्ति।
धनुः पृथक्त्वं पक्षिषु भुजचारिणो गव्यूत पृथक्त्वम्॥३०॥

अन्वयः—मच्छा य गब्भया उरगा जोयण-सहस्स माणा हुंति, पक्खिसु धणुह-पुहुत्तं, भुअचारी गाउअ-पुहुत्तं ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

मच्छा = मछलियां, जलचर जीव
गब्भया = गर्भज
उरगा = उरःपरिसर्प, सांप आदि
जोयण-सहस्स-माणा = हज़ार योजन प्रमाण वाले
हुंति = होते हैं
पक्खिसु = पक्षियों में
धणुह पुहुत्तं = धनुष्य पृथक्त्व
भुअचारी = भुजपरिसर्प
गाउअ = गव्यूत
पुहुत्तं = पृथक्त्व

गाथार्थ

मछलियां [जलचर जीव] और गर्भज उरःपरिसर्प जीव हजार योजन के प्रमाण वाले होते हैं। पक्षियों में [खेचर जीवों में] धनुष्य पृथक्त्व [तथा] भुजपरिसर्प-गव्यूत पृथकत्व होते हैं।

विवेचन

सम्मूर्छिम तथा गर्भज दोनों प्रकार के जलचर जीवों के एवँ गर्भज उरः-परिसर्प (सांप आदि) जीवों के शरीर की लम्बाई अधिक से अधिक एक हज़ार योजन की है। इस प्रकार के मत्स्य स्वयंभूरमण समुद्र में होते हैं। यहां पर जिन जीवों के शरीर का प्रमाण दिया गया है वे सब ढाई द्वीप से बाहर के जीवों को समझना चाहिये।

प्रश्न = पृथक्त्व किस को कहते हैं ?

उत्तर = दो से लेकर नव तककी संख्या को पृथक्त्व कहते हैं।

जैसे = २ से ३, २से ४, २से ५, २ से ६, २से ७, २से ८, २ से ९। ३ से ४, ३ से ५, ३से ६, ३से ७, ३से ८, ३से ९। ४से ५, ४से ६, ४ से ७, ४से ८, ४से ९। ५ से ६, ५से ७, ५से ८, ५से ९। ६से ७, ६से ८, ६ से ९ ७से ८, ७से ९। ८से ९। ये सब पृथक्त्व के भेद हैं।

सम्मूर्छिम तिर्यंच पचेंद्रिय जीवों के शरीर की उचाइ

***खयरा धणुह-पुहुत्तं, भुयगा उरगा य जोयण-पुहुत्तं।**
गाउअ-पुहुत्त-मित्ता, समुच्छिमा चउप्पया भणिया॥

अन्वय —समुच्छिमा खयरा य भुयगा धणुह-पुहुत्तं, उरगा जोयण पुहुत्तं चउप्पया गाउअ-पुहुत्त मित्ता भणिया ॥३१॥

शब्दार्थ

समुच्छिमा = सम्मूर्छिम	जोयण-पुहुत्तं = योजन पृथक्त्व
खयरा = खचर	चउप्पया = चतुष्पद
भुयगा = भुजपरिसर्प	गाउ अ पुहुत्त मित्ता = गव्यूत पृथक्त्व माप वाले
धनुह पुहुत्त = धनुष्य पृथक्त्व	भणिया = कहे गये हैं
उरगा = उर परिसर्प	

---

*खचराणां धनुःपृथक्त्वं भुजगानामुरगाणां च योजन पृथक्त्वम्।
गव्यूतिपृथक्त्वमात्राः सम्मूर्छिमाश्चतुष्पदा भणिताः ॥३१॥

गाथार्थ

सम्मूर्छिम खेचर और भुजपरिसर्प धनुष्य पृथक्त्व. उरः परिसर्प योजन पृथक्त्व, चतुष्पद गव्यूत पृथक्त्व माप वाले कहे गये हैं ॥ ३१ ॥

विवेचन

सम्मूर्छिम खेचर }
,, भुजपरिसर्प } २से ६ धनुष्यकी ऊंचाई(लम्बाई)

सम्मूर्छिम उरपरिसर्प—२ से ६ योजन की ऊंचाई (लम्बाई)
,, चतुष्पद—२ से ६ कोस की ऊंचाई (लम्बाई)
,, जलचर—१ हजार योजन से अधिक ऊंचाई

गर्भज चतुष्पद और मनुष्यों की ऊँचाई

***छच्चेव गाउ आइं, चउप्पया गब्भया मुणेयव्वा ।**
कोस-तिगं च मणुस्सा, उकोस सरीर माणेणं॥३२॥

अन्वयः – गब्भया चउप्पया छच्चेव गाउ आइं मुणेयव्वा, च मणुस्सा उक्कोस-सरीर-माणेण कोस-तिगं ॥ ३२ ॥

---

* *षड्गव्यूतय एव चतुष्पदा गर्भजा ज्ञातव्याः (मन्तव्याः)*
क्रोशत्रिकं च मनुष्याः उत्कृष्ट शरीर मानेन ॥ ३२॥

शब्दार्थ

गब्भया = गर्भज
चउप्पया = चतुष्पद
छच्चेव = छ
गाउआइं = कोस
मुणेयव्वा = जानना चाहिये
च = और
मणुस्सा = मनुष्य
उक्कोस-सरीर-माणेण = उत्कृष्ट शरीर के प्रमाण की अपेक्षा से
कोस = कोस
तिन्न = तीन

गाथार्थ

गर्भज चतुष्पद छ कोस के जानना चाहिये, और मनुष्य उत्कृष्ट शरीर के प्रमाण की अपेक्षासे तीन कोस [होते हैं] ॥२२॥

विवेचन

गर्भज जलचर के शरीर की ऊंचाई	—	—१ हजार योजन*
" उरपरिसर्प के " " "	—	—१ हजार योजन*
" भुजपरिसर्प के " " "	—	—२ से ९ कोस*
" खचर के " " "	—	—२ से ९ धनुष्य*
" चतुष्पद के " " "	—	६ कोस
" मनुष्य के " "	—	३ कोस

गर्भज मनुष्य के शरीर की ऊंचाई अधिक से अधिक तीन कोस देवकुरु और उत्तर कुरु क्षेत्र के युगलियों की होती है, तथा

*गाथा नम्बर १० में

भरत एरावतमें सुषमसुषम नामक प्रथम आरे में होतो है।
छः कोस के चतुष्पद देवकुरु और उत्तर कुरु में होते हैं।

(५) देवों के शरीर की ऊंचाई

***ईसाणंत सुराणं रयणीओ, सत्त हुंति उच्चत्तं।**
दुग-दुग-दुग-चउ-गेवि,-ज्जणुत्तरेक्कि परिहाणी
॥ ३२ ॥

अन्वय :—ईसाणत सुराण उच्चत्तं सत्त रयणीओ हुंति, दुग-दुग दुग-चउ गेविज्जणुत्तरे-क्कि परिहाणी ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

ईसाणंत = [दूसरे] देव लोक तक के
सुराणं = देवताओं की
उच्चत्तं = ऊंचाई
सत्त = सात
रयणीओ = हाथ की
हुंति = होती है

दुग-दुग-दुग = दो-दो-दो
चउ-गेविज्ज-अणुत्तरे = चार ग्रैवेयक [और] अनुत्तर [विमानों के देवों का शरीर मान]
[इ] क्कि परिहाणी = एक एक [हाथ] कम है

गाथार्थ

ईशान [दूसरे] देवलोक तकके देवताओं की ऊंचाई

---

* ईशानान्तसुराणां रत्नयः सप्त भवन्त्युच्चत्वम् ।
द्विकद्विकद्विकचतुष्कग्रैवेयकानुत्तरेष्वेकैकपरिहानिः ॥३२॥

सात हाथ की है। दो, दो, दो, चार ग्रैवेयक [और] अनुत्तर [विमानो के देवो का शरीरमान] एक एक (हाथ) कम है ॥२३॥

विवेचन

भवनपति व्यंतर, वाण-व्यंतर, ज्योतिष्क, तिर्यक्-जृंभक परमअधार्मिक, पहले और दूसरे देवलोक तथा पहले किल्विषिक ।	के देवों की ऊंचाई = ७ हाथ की
तीसरे, चौथे देवलोक तथा दूसरे किल्विषिक	के देवों की ऊंचाई = ६ हाथ की
पांचवें छठे देवलोक, तीसरे किल्विषिक, नव लोकांतिक	के देवों की ऊंचाई = ५ हाथ की
सातवें और आठवें देवलोक—	के देवों की ऊंचाई = ४ हाथ की
नवमें, दसवें ग्यारहवें और बारहवें देव लोक	के देवों की ऊंचाई = ३ हाथ की

नव ग्रैवेयक— के देवों की ऊंचाई—२ हाथ की

पांच अनुत्तर विमानों के देवों की ऊंचाई —१ हाथ की

जीवों के शरीर की ऊंचाई का प्रकरण यहां पूरा होता है

२—आयुष्य द्वार

(१) एकेन्द्रिय जीवों की उत्कृष्ट आयुष्य

*वावीसा पुढवीए सत्त य आउस्स तिन्नि वाउस्स ।
वास सहस्सा दस तरु-गणाण तेउ तिरत्ताऊ॥३४

अन्वय :—पुढवीए, आउस्स, वाउस्स, तरु-गणाण बावीसा, सत्त, तिन्नि, य दस वास सहस्सा, तेऊ तिरत्त-आऊ ॥३४॥

शब्दार्थ

पुढवीए = पृथ्वी काय की
आउस्स = अप्काय की
वाउस्स = वायु काय की
तरु-गणाण = प्रत्येक वनस्पति काय की
वावीसा = बाइस
सत्त = सात
तिन्नि = तीन
दस = दस
वास सहस्सा = हजार वर्ष की
तेऊ = अग्निकाय की
तिरत्त = तीन अहोरात्र की
आऊ = आयुष्य है

---

*द्वावि शतिः पृथिव्याः सप्तअप्कायस्य त्रीणि वायु कायस्य ।
वर्ष सहस्रा दश तरुगणानां तेजकायस्य त्रीण्याहो रात्राण्यायुः। ३४

† पृथ्वीकाय में इतनी विशेषता समझनी चाहिये :—

लक्ष्ण (कोमल) पृथ्वी की उत्कृष्ट आयु = १ हजार वर्ष की
शुद्ध पृथ्वी „ „ „ = १२ हजार वर्ष
रेत (बालु) „ „ „ = १४ हजार वर्ष
मैन सिल „ „ „ = १६ हजार वर्ष

गाथार्थ

पृथ्वीकाय की, अप्काय की, वायुकाय की, प्रत्येक वनस्पति काय की [क्रमश] बाइस-सात तीन और दस हजार वर्ष की, [तथा] तेऊकाय की तीन अहोरात्र की [उत्कृष्ट] आयुष्य है ॥३४॥

वास सहस्सा का सम्बन्ध हरेक के साथ होने से —

पृथ्वी काय की उत्कृष्ट आयुष्य	=२२ हजार वर्ष की
अप् काय की " "	= ७ हजार वर्ष की
वायु काय की " "	= ३ हजार वर्ष की
प्रत्येक वनस्पतिकाय की "	=१० हजार वर्ष की
तेऊ काय की " "	= ३ रात दिन की

तिरत्त" अर्थात् ३ रात । तीन रात होवें, तब बीच में तीन दिन भी आते ही हैं, इसलिये तीन दिन और तीन रात अर्थात् तीन अहोरात की आयुष्य समझनी चाहिये । अहो [अहन्] अर्थात् दिन ।

(२) विकलेन्द्रिय जीवों की उत्कृष्ट आयुष्य

*वासाणि वारसाऊ बेइंदियाण तेइंदियाण तु।
अउणापन्न-दिणाइ ,-चउरिंदीण तुछम्मासा ॥३५॥

पत्थर के कंकर " " "	=१८ हजार वर्ष
अति कठिन पृथ्वी " "	=२२ हजार वर्ष

हरेक की जघन्य आयुष्य अन्तर्मुहूर्त समझना चाहिये ।

*वर्षाणि द्वादशायुर्द्वीन्द्रियाणां त्रीन्द्रियाणां तु ।
एकोनपञ्चाशद्दिनानि चतुरिन्द्रियाणां तु षण्मासाः ॥३५॥

अन्वय.—बेइंदियाण, तेइंदियाण तु चउरिंदीणं आऊ बारस वासाणि अउणापन्न दिणाइं तु छम्मासा ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

बेइंदियाणं = दो इन्द्रिय	बारस = बारह
तेइंदियाणं = तेइन्द्रिय	वासाणि = वर्ष
तु = और	अउणापन्न = उनचास
चउरिंदीणं = चतुरिन्द्रिय जीवों को	दिणाइं = दिन
आऊ = आयुष्य	छम्मासा = छः मास

गाथार्थ

दो इन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों की आयुष्य [क्रमशः] बारह वर्षों, उनचास दिनों तथा छः मास (महीने) की है ॥३५॥

(३) देवता (४) नारकी तथा (५) गर्भज-चतुष्पद तिर्यंच एव (६) मनुष्यों की उत्कृष्ट आयुष्य ।

*सुर-नेरइयाण ठिई, उक्कोसा सागराणि तित्तीसं ।
चउ-प्पय-तिरिय-मणुस्सा, तिन्नि य पलिओवमा हुंति ॥३६॥

---

*सुरनैरयिकाणां स्थितिरुत्कृष्टा सागरोपमाणि त्रयस्त्रिंशत ।
चतुष्पदतिर्यचमनुष्याणां, त्रीणि च पल्योपमाणि भवन्ति ॥३६॥

अन्वय —सुर-नेरइयाण य चउप्पय तिरिय मणुस्सा उक्कोसा ठिई तित्तीसं सागराणि, तिन्नि पलिओवमा हुंति ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

सुर = देवता	तित्तीस = तेतीस
नेरइयाण = नारकी	सागराणि = सागरोपम
चउप्पय तिरिय = चतुष्पद तिर्यंचों	तिन्नी = तीन
मणुस्सा = मनुष्यों की	पलिओवमा = पल्योपम
उक्कोसा-ठिई = उत्कृष्ट स्थिति	हुंति = है

गाथार्थ

देवता, नारकी, तथा चतुष्पद तिर्यंचों, मनुष्योंकी उत्कृष्ट स्थिति [क्रमशः] तेतीस सागरोपम एव तीन पल्योपम की है ॥३७॥

विवेचन

देवों का उत्कृष्ट आयुष्य	=३३ सागरोपम
नारकों का ,, ,,	=३३ सागरोपम
चतुष्पद तिर्यंचों का ,,	= ३ पल्योपम
मनुष्यों का ,, ,,	= ३ पल्योपम

देवोंका आयुष्य अनुत्तर विमान वासी देवों की अपेक्षा से तथा नारकों का सातवीं नरककी अपेक्षासे कहा है। एव चतुष्पद तिर्यंचों और मनुष्यों का उत्कृष्ट आयुष्य देव कुरु—उत्तर कुरु की अपेक्षा से तथा भरत और एरवत क्षेत्र में पहले आरे की

अपेक्षा से कहा है।

देव नारक का जघन्य आयुष्य १० हजार वर्ष का तथा मनुष्य एवं तिर्यंचों का अन्तर्मुहूर्त का होता है।

प्रश्नः—पल्योपम किसको कहते हैं ?

उत्तर :—असंख्य वर्ष का एक पल्योपम होता है।

प्रश्न :—सागरोपम किसको कहते हैं ?

उत्तर :—दस कोड़ा कोड़ी (१००००००० × १००००००० × १०) पल्योपम का एक सागरोपम होता है।

(७) *गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यंचों की उत्कृष्ट आयुष्य*

***जलयर-उर-भुयगाणं, परमाऊ होइ पुव्व कोडीउ।**
पक्खीणं पुण भणिओ, असंख-भागो य पलियस्स॥

अन्वयः—जलयर-उर-भुयगाण परमाऊ-पुव्वकोडी होइ, पुण य पक्खीण पलियस्स असंख-भागो भणिओ ॥२७॥

शब्दार्थ

जलयर = जलचर
उर = उरपरिसर्प [तथा]
भुयगाणं = भुजपरिसर्प जीवों की
परमाऊ = उत्कृष्ट आयुष्य
पुव्व कोडी = करोड़ पूर्व की
होइ है
पुण = पुन -एवं
पक्खीणं = पक्षियों को
पलियस्स = पल्योपम का
असंख भागो = असंख्यातवा भाग
भणिओ = कहा है

---

*जलचरोरगभुजगाना परमायुर्भवति पूर्वकोटी तु ।
पक्षिणा पुनर्भणितोऽसंख्येयभागश्च पल्योपमस्य ॥२७॥

गाथार्थ

जलचर, उरपरिसर्प [तथा] भुजपरिसर्प जीवों की उत्कृष्ट आयुष्य करोड पूर्व की है, एव पक्षिया की पल्योपम का असख्यातवा भाग कहा है ॥३७॥

विवेचन

यहाँ जलचर सम्मूर्छिम और गर्भज इन दोनों की करोड पूर्व की आयुष्य समझना चाहिये क्यों कि अन्य ग्रन्थों मे ऐसा ही वर्णन है।

१—गर्भज जलचरों का उत्कृष्ट आयुष्य =१०००००० पूर्व
२—सम्मूर्छिम „ , „ =१०००००० पूर्व
*३—सम्मूर्छिम चतुष्पदों , , „ „ =८४००० वर्ष
४—गर्भज भुजपरिसर्पों „ „ , , =१०००००० वर्ष
*५—सम्मूर्छिम „ „ „ „ = ४२००० वर्ष
६—गर्भज उरपरिसर्पों , „ „ „ =१०००००० वर्ष
*७—सम्मूर्छिम „ , , = ५३००० वर्ष
८—गर्भज पक्षी „ , , =पल्योपमका असख्यातवाँ भाग
*९—सम्मूर्छिम पक्षी , , , , = ७२००० वर्ष

*इस निशान वाले पचेन्द्रिय तिर्यचो की आयु गाथा में नहीं है परन्तु अन्य ग्रथों में उपरोक्त प्रकार से कहा है जिसकी गाथा यह है —

समुच्छी पणिदि थलयर-खयर-उरग-भुयग-जिट्ठ-ट्ठिई कमसो।
वास सहस्सा चुलसी बिसत्तरी, तिपन्न बायाला ॥

प्रश्न=पूर्व किसे कहते हैं ?

उत्तर=सत्तर लाख छप्पन हज़ार करोड़:—

(७०५६००००००००००) वर्षों का एक पूर्व होता है

(८) सूक्ष्म एकेन्द्रिय, (९) साधारण वनस्पतिकाय तथा

(१०) सम्मूर्छिम मनुष्यों का जघन्य तथा उत्कृष्ट आयुष्य

*सव्वे सुहुमा साहारणा य समुच्छिमा मणुस्सा य।
उक्कोस-जहन्नेणं अंत-मुहुत्तं चिय जियंति ॥३८॥

अन्वय:—सव्वे सुहुमा, साहारणा, य, समुच्छिमा मणुस्सा उक्कोस-जहन्नेण अंत-मुहुत्तं चिय जियंति ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

सव्वे = सब	उक्कोस = उत्कृष्ट से
सुहुमा = सूक्ष्म जीव	जहन्नेणं = जघन्य से
साहारणा = साधारण वनस्पति काय	अंत-मुहुत्तं = अंतर्मुहूर्त्त
समुच्छिमा = सम्मूर्छिम	चिय = मात्र, निश्चय, ही
मणुस्सा = मनुष्य	जियंति = जीते हैं

गाथार्थ

सब सूक्ष्मजीव, साधारण वनस्पतिकाय और सम्मूर्छिम मनुष्य उत्कृष्ठ से तथा जघन्य से अन्तर्मुहूर्त्त मात्र जीते हैं ॥ ३८ ॥

---

*सर्वे सूक्ष्मा: साधारणाश्च सम्मूर्च्छिमा मनुष्याश्च ।
उत्कर्षेण जघन्येनाऽन्तर्मुहूर्त्तमेव जीवन्ति ॥ ३८ ॥

विवेचन

सूक्ष्म पृथ्वीकाय आदि पांचों प्रकारके जीव, सूक्ष्म और बादर साधारण वनस्पति कायके जीव तथा सम्मूर्छिम मनुष्य इन सबकी उत्कृष्ट एव जघन्य आयुष्य मात्र अन्तर्मुहूर्त की ही होती है।

प्रश्न —सम्मूर्छिम मनुष्य किसे कहते हैं ?

उत्तर—एक सौ एक (१०१) क्षेत्रों के गर्भज स्त्री पुरुष और नपुंसक जाति के मनुष्यो के-मल, मूत्र, वीर्य, श्लेष्म, पित्त, पसीने आदि चौदह प्रकार के अशुचि स्थानों में से उत्पन्न होते हैं। इनके शरीर की अवगाहना अंगुल का असंख्यातवां भाग होती है तथा मन रहित (असंज्ञि) और मिथ्यादृष्टि होते हैं। ये इतने सूक्ष्म होते हैं कि चमचक्षु से दिखलाई नही देते और अपर्याप्त अवस्था में ही मर जाते हैं।

अवगाहना और आयुष्य (इन दोनों) द्वारों का उपसंहार

*ओगाहणाउ-माण एव संखेवओ समक्खाय ।
जे पुण इत्थ विसेसा, विसेस-सुत्ताउ ते नेया ॥३६॥

अन्वय —एव ओगाहणाउ-माणं संखेवओ-समक्खायं। पुण इत्थ जे विसेसा, त विसेस सुत्ताउ नेया ॥ ३६ ॥

---

*अवगाहनाऽऽयुर्मानमेवं संक्षेपतः समाख्यातम् ।
ये पुनरत्र विशेषा विशेषसूत्रेभ्यस्ते ज्ञेया ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

एवं = इस प्रकार
ओगाहणा = अवगाहना (और)
आउ = आयुष्य का
माणं = प्रमाण
संखेवओ = संक्षेप से
समक्खायं = कहा गया है
पुण = तथापि
इत्थ = इस में
जे = जो
विसेसा = विशेष है
ते = सो
विसेस सुत्ताउ = विशेष सूत्रों से
नेया = जानें

गाथार्थ

इस प्रकार अवगाहना और आयुष्य का प्रमाण संक्षेप से कहा गया है। इस में जो विशेष है सो विशेष सूत्रों से जानें ॥ ३९ ॥

विवेचन

इस प्रकरण में हरेक विषय मात्र संक्षेप से ही कहा गया है इस लिये इन दोनो द्वारों का भी संक्षेप में ही वर्णन किया गया है इस विषय में यदि विशेष जानने की इच्छा हो तो "संग्रहणी" "प्रज्ञापना" आदि सूत्रों से जानना चाहिये।

स्वकाय स्थिति द्वार

(१) एकेन्द्रिय जीवोंकी स्वकाय स्थिति

***एगिंदिया य सव्वे, असंख उस्सप्पिणी सकायम्मि।**
उववज्जंति चयंति-य, अणंतकाया अणंताओ॥४०॥

एकेन्द्रियाश्च सर्वेऽसंख्येयोत्सर्पिण्यवसर्पिणीः स्वकाये।
उत्पद्यन्ते च्यवन्ते चानन्तकाया अनन्ताः ॥४०॥

अन्वय — सव्वे एगिंदिया य अणतकाया सकायम्मि असख य अणताओ उस्सप्पिणी, उववज्ज ति य चयति ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

सव्वे = सब	य = और
एगिंदिया = एकेन्द्रिय जीव	अणताओ = अनन्त
अनन्त काया = अनन्त काय जीव	उस्सप्पिणी = उत्सर्पिणी अवसर्पिणीतक
सकायम्मि = अपनी काया में	उववज्ज ति = उत्पन्न होते
असंख = असंख्य	चयंति = मरते हैं

गाथार्थ

सब एकेन्द्रिय जीव तथा अनन्तकाय जीव अपनी काया में (एक प्रकार के जीव भेद में) [क्रमशः] असंख्य और अनन्त उत्सर्पिणी अवसर्पिणी तक उत्पन्न होते एव मरते हैं ॥४०॥

विवेचन

स्वकाय में—अर्थात् पृथ्वीकाय जीव पृथ्वीकाय में ही कहाँ तक उत्पन्न होता है ? तो असंख्य उत्सर्पिणी अवसर्पिणी तक उत्पन्न होता है और मरता है। इसी प्रकार अप्काय, अग्निकाय वायुकाय और प्रत्येक वनस्पतिकाय के विषय में भी समझना चाहिये।

साधारण वनस्पतिकाय जीव बार बार साधारण वनस्पति

में अनन्त उत्सर्पिणी अवसर्पिणी तक उत्पन्न होता और मरता है।

यहाँ यह स्वकाय स्थिति सांव्यवहारिक निगोद के जीवों को आश्रित करके कही है। असंव्यवहारिक निगोद जीव तो अनादि काल से जन्म मरण किया करता है।

प्रश्न—उत्सर्पिणी किसे कहते हैं ?

उत्तर—दस कोड़ा कोडी (१०००००००×१००००००×१०) सागरोपम की एक उत्सर्पिणी तथा उतने समय ही की एक अवसर्पिणी होती है।

(२) *विकलेन्द्रिय तथा पंचेन्द्रिय जीवों की स्वकाय स्थिति*

***संखिज्ज-समा विगला, सत्तट्ठ-भवा पणिंदि-तिरि-मणुआ।**

उववज्जंति सकाए, नारय-देवा य ना चेव॥४१॥

अन्वयः—विगला संखिज्ज-समा, पणिंदि-तिरि-मणुआ सत्तट्ठ-भवा सकाए उववज्जंति, नारय य देवा नो चेव॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

विगला = विकलेन्द्रिय जीव	**सकाए** = स्वकाय में
संखिज्ज समा = संख्याता वर्ष	**उववज्जंति** = उत्पन्न होते हैं
पणिंदि = पचेन्द्रिय	**नारय** = नारक
तिरि = तिर्यंच [और]	**देवा** = देव
मणुआ = मनुष्य	**नो** = नहीं
सत्तट्ठ-भवा = सात आठ भवतक	**चेव** = ही

---

*संख्येय समान् विकलाः सप्ताष्ट भवान् पञ्चेन्द्रियतिर्यगमनुष्याः उत्पद्यन्ते स्वकाये नारका देवा न चैव ॥ ४१ ॥

गाथार्थ

विकलेन्द्रिय (दो इन्द्रिय, ते इन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय) जीव सरयाता वर्षों तक, पचन्द्रिय तिर्यंच [तथा] मनुष्य सात अथवा आठ भव तक स्वकाय मे (अपनी काया म) उत्पन्न होते है। परन्तु नारक और देव [अपनी कायामें उत्पन्न] ही नही [होते] ॥ ४१ ॥

विवेचन

प्रश्न—पचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्य के सात अथवा आठ भव ऐसा दो प्रकार से कहने का क्या कारण है ?

उत्तर—आठवाँ भव मात्र असख्यात वर्ष की आयु वाले युगलियोंका ही होता है। वहाँ से देव भव में जाकर पीछे मनुष्य अथवा तिर्यंच में आसकता है, परन्तु एक साथ आठ से अधिक भव नहीं कर सकता। और सात भव सरयात वर्षकी आयु वाला करता है, आठवाँ भव नहीं कर सकता।

तथा यदि कोई पचन्द्रिय त च एक जाति के भव करे तो भी सात ही कर सकता है। यदि जुदा जुदा पचेन्द्रिय तिर्यंच हो तो भी सात ही भव करता है। परन्तु यदि किसीको आठवाँ भव करना पड़े तो युगलिक तिर्यंच-गर्भज चतुष्पद और खेचर का भव ही हरेक कर सकता है। दूसरा कोई भी भव नहीं कर सकता। क्योंकि क्रोड पूर्व वर्ष से अधिक आयुष्य वाला ही युगलिक होता

है। चतुष्पद और खेचर के सिवाय इतना किसी भी पंचेंद्रिय तिर्यंच का आयुष्य नहीं होता।

४—प्राणद्वार

दस प्राण, तथा एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय के प्राण

***दसहा जिआण पाणा, इंदिय-ऊसास-आउ-बल-रूवा।**

एगिंदिएसु-चउरो, विगलेसु छ सत्त अट्ठेव ॥४२॥

अन्वयः—जिआण इंदिय-ऊसास-आउ-बल, रूवा दसहा पाणा एगिंदिएसु चउरो विगलेसु छ-सत्त-अट्ठेव ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

जिआण = जीवों के	पाणा = प्राण
इंदिय = इन्द्रिया	एगिंदिएसु = एकेन्द्रियों के
ऊसास = श्वासोश्वास	चउरो = चार
आउ = आयुष्य	विगलेसु = विकलेन्द्रियों के
बलरूवा = बल रूप	छ-सत्त-अट्ठेव = छः सात और आठ ही [होते हैं]
दसहा = दस प्रकार के	

---

*दशधाः जीवानां प्राणाः इन्द्रियोच्छ्वासायुर्बल रूपाः।
एकेन्द्रियेषु चत्वारो विकलेषु षट् सप्त अष्टैव ॥ ४२ ॥

गाथार्थ

जीवों के इन्द्रिया, श्वसोश्वास, आयुष्य और बल रूप दस प्रकार के प्राण [होते हैं] । एकेन्द्रियोंके चार तथा विकलेन्द्रियोंके छः सात और आठ ही [होते हैं]॥४२॥

विवेचन

जिस शक्ति से ये जीव जीते हैं उस शक्ति को प्राण कहते हैं।

जीवों को दस प्रकार के प्राण होते हैं, वे इस तरह से — पांच इन्द्रियाँ = स्पर्शनेन्द्रिय रसनेन्द्रिय घ्राणेन्द्रिय, चक्षुरिंद्रिय, श्रोत्रेन्द्रिय ।

तीन बल = मन बल वचन बल, काय बल ।
एक = श्वासोश्वास
एक = आयु
कुल १० प्राण

इन दस प्राणों में से- निम्न चार प्राण एकेन्द्रिय जीवों को होते हैं —

(१) स्पर्शनेद्रिय प्राण, (२) श्वासोश्वास (३) आयुष्य और (४) काय बल ।

द्वीन्द्रिय जीवों के छ प्राण होते हैं —

स्पर्शनेन्द्रिय प्राण, रसनेन्द्रिय प्राण श्वासोश्वास आयुष्य, काय बल और वचन बल ।

त्रीन्द्रिय जीवों के सात प्राण होते हैं —

स्पर्शनेन्द्रियप्राण, रसनेन्द्रिय प्राण, घ्राणेन्द्रिय प्राण, श्वासो-श्वास, आयुष्य काय बल और वचन बल ।

चउरिन्द्रिय जीवों के आठ प्राण होते हैं :—

स्पर्शनेन्द्रिय प्राण, रसनेन्द्रिय प्राण, घ्राणेन्द्रिय प्राण, चक्षुरिन्द्रिय प्राण, श्वासोश्वास, आयुष्य, कायबल, वचनबल।

असंज्ञि तथा संज्ञि पंचेन्द्रिय के प्राण

***असन्नि-सन्नि पंचिं-दिएसु नव दस कमेण बोधव्वा।**
तेहिं सह विप्पओगो जीवाण भण्णए मरणं ॥४३॥

अन्वय :—असन्नि-सन्नि-पंचिंदिएसु कमेण नव-दस बोधव्वा।
तेहिं सह विप्पओगो जीवाण मरण भण्णए ॥४३॥

शब्दार्थ

असन्नि=बिना मनवाले, असंज्ञि
सन्नि=मनवाले, संज्ञि
पंचिंदिएसु=पंचेन्द्रिय जीवों को
कमेण=अनुक्रम से
नव=नव [और]
दस=दस
बोधव्वा=जानना चाहिये
तेहिं=उनके
सह=साथ
विप्पओगो=विप्रयोग, वियोग
जीवाणं=जीवों का
मरणं भण्णए=मरण कहलाता है

गाथार्थ

असंज्ञि (बिना मन वाले) और संज्ञि (मन वाले) पंचेन्द्रिय जीवों को अनुक्रम से नव और दस [प्राण]

---

*असंज्ञिसंज्ञिपञ्चेन्द्रियेषु नव दश क्रमेण बोधव्याः।
तैः सह विप्रयोगो जीवानां भण्यते मरणम् ॥ ४३ ॥

जानना चाहिये। उनके साथ वियोग [ही] जीवों का मरण कहलाता है ॥४३॥

विवेचन

असज्ञि पचेन्द्रियों को —स्पर्शनेन्द्रिय प्राण,, रसनेन्द्रिय प्राण, घ्राणेन्द्रिय प्राण चक्षुरिन्द्रिय प्राण, श्रोत्रेन्द्रिय प्राण, श्वासोच्छ्वास, आयुष्य, कायबल और वचनबल ये नव प्राण होते हैं। और सज्ञि पचेंद्रियोंके पूर्वोक्त नव और मनोबल ये दस,प्राण कहे गये हैं।

"दुनिया में अमुक जीव मर गया" ऐसा कहते हैं। इस का वास्तविक क्या अर्थ है ? वह इस गाथा के पिछले आधे भाग में समझाया गया है। जोकि इस प्रकार है —

जिनको जितने प्राण कहे गये हैं, उन प्राणों से वियोग होना ही उन जीवों का मरण कहलाता है। मृत्यु का मतलब हैं, "प्राणों का वियोग"। अर्थात् प्राणों से आत्मा का वियोग होना ही मरण है।

गर्भज तिर्यंच, मनुष्य, देव एवं नारक ये सज्ञि पचेन्द्रिय कहलाते हैं। बाकी के जीव असज्ञि कहलाते हैं। क्यों कि व बिना मन के होते हैं। इन में भी मनके बिना पचेन्द्रिय—असज्ञी पचेन्द्रिय कहलाते हैं। सम्मूर्छिम पचेंद्रिय तियच और मनुष्य असज्ञी पंचेद्रिय हैं।

सम्मूर्छिम मनुष्यों म व्चन बल नहीं होता इस लिये इसे आठ प्राण होते हैं। और कइ श्वासोश्वास पर्याप्ति पूरी करने से

विवेचन

ससार अनादि अनन्त काल का है और बहुत ही भयकर है। धर्म न पाये हुए जीवों को अन त वार प्राणों का वियोग होता है अर्थात् मरना पडता है। कहा भी है कि —

"कोटिशो विपया प्राता सपदश्च सहस्रश।
राज्य तु शतश प्राप न तु धर्म कदाचन॥'

अर्थात्-पाँचों इन्द्रियों के विषय सुख करोडों वार प्राप्त हुए लक्ष्मी हजारों वार प्राप्त हुई तथा राज्य भी सैकडा वार प्राप्त हुआ। यदि अनत वार मृत्यु से बचना हो, तो एक मात्र धम ही का उपाय करो। धम करने वाला जीव जल्दो से जल्दी मृत्यु को परम्परा से छूट जाता है, तथा अमर बनता है। इस लिये प्रत्येक क्षण, प्रति दिन, सारी आयुमे जितना भी समय मिले धर्म अवश्य करना चाहिये।

४—योनि द्वार

(१) एकेन्द्रिय जीवों की योनि सख्या

***तह चउरासी लक्खा, सखा जोणीण होइ जीवाण।**
पुढवाईणो चउण्ह पत्तेय सत्त सत्तेव ॥४५॥

**तथा चतुरशीतिर्लक्षा सख्या योनीना भवति जीवानाम्।*
पृथिव्यादीनां चतुर्णां प्रत्येक सप्त सप्तैव ॥ ४५ ॥

अन्वयः—तह जीवाण जोणीण संखा चउरासी लक्खा होइ।
पुढवाईणो चउण्हं पत्तेयं सत्त सत्तेव ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

तह = तथा
जीवाणं = जीवों की
जोणीणं = योनियों की
संखा = संख्या
चउरासी = चौरासी
लक्खा = लाख
होइ = है
पुढवाईणो = पृथ्वी आदि
चउण्हं = चारों की
पत्तेय = हरेक की
सत्त = सात
सत्तेव = सात हैं

गाथार्थ

तथा जीवों की योनियों की संख्या चौरासी लाख है। पृथ्वीकाय आदि चारोंकी हरेककी [योनि संख्या] सात सात [लाख] है।

विवेचन

जीवों के उत्पत्ति स्थान को योनि कहते हैं। जीवों के उत्पत्ति स्थान असंख्य हैं। परन्तु जिन जिन स्थानों में स्पर्श, रस, गंध, वर्ण और संस्थान की समानता है उन स्थानों को यदि एक गिना जावे तो ऐसे चौरासी लाख स्थान हैं।

पृथ्वीकाय, अप्काय, तेऊकाय, वायुकाय इन चार प्रकार मे से हरेक प्रकार के जीवों की सात सात लाख योनियां हैं।

(२) सभी जीवों का योनि सार ॥

६ दस पत्तेय तरूणं चउदस लक्खा हवंति इयरेसु।
विगलिंदिएसु दो दो चउरो पचिंदि तिरियाण।४६।
चउरो चउरो नारय, सुरेसु मणुआण चउदस हवंति
संपिंडिआ य सव्वे, चुलसी लक्खाउ जोणीण॥४७॥

अन्वय —पत्तेय तरूण दस, इयरेसु चउदस लक्खा हवंति। विगलिंदिएसु दो दो, पचिंदि तिरियाण चउरो नारय सुरेसु चउरो चउरो य मणुआण चउदस [लक्खा] हवंति। सव्वे संपिंडिआ जोणीण चुलसी लक्खा ॥ ४६-४७ ॥

शब्दार्थ

दस = दस	पचिंदि तिरियाण = पचन्द्रियतिर्यचों की
पत्तेय तरूणं = प्रत्येक वनस्पति काय की	चउरो = चार
इयरेसु = इतर (साधारण वनस्पति काय की)	नारय सुरेसु = नारक और देवों की
चउदस लक्खा = चौदह लाख	मणुआण = मनुष्यों की
हवंति = हैं	संपिंडिआ = मिलाने से
विगलिंदिएसु = विकलेन्द्रिय की	सव्व = सब
दो-दो = दो दो	जोणिण = योनियां
	चुलसी = चौरासी
	लक्खा = लाख

*दश प्रत्येकतरूणां चतुर्दश लक्षा भवन्तीतरेषु।
विकलेन्द्रियेषु द्वे द्वे चत्वारः पञ्चेन्द्रियतिरश्चाम् ॥४६॥
चत्वारश्चत्वारो नारकसुरेषु मनुष्याणां चतुर्दश भवन्ति।
संपिण्डिताश्च सर्वे चतुरशीतिर्लक्षास्तु योनीनाम् ॥४७॥

गाथार्थ

प्रत्येक वनस्पतिकाय तथा साधारण वनस्पतिकाय [जीवों] की योनियां दस और चौदह लाख हैं। विकलेन्द्रिय (दो इन्द्रिय, तेइन्द्रिय चतुरिंद्रिय) जीवों की दो-दो, पंचेन्द्रिय तिर्यचों की चार. नरक और देवों की चार चार तथा मनुष्यों की चौदह लाख योनियां होती हैं। सब मिलाने से चोरासी लाख योनियां होती हैं ॥ ४६ ४७ ॥

विवेचन

पृथ्वीकाय	—७ लाख	तेउकाय	=७ लाख
अप्काय	—७ लाख	वायुकाय	=७ लाख
प्रत्येक वनस्पतिकाय	—१० लाख	तिर्यंच पंचेन्द्रिय	४ लाख
साधारण ,, ,,	—१४ लाख	देवता	—४ लाख
दो इन्द्रिय	—२ लाख	नारको	—४ लाख
तेइन्द्रिय	—२ लाख	मनुष्य	—१४लाख
चतुरिंद्रिय	—२ लाख		
		कुल	८४ लाख योनिया

सिद्धों का स्वरूप

***सिद्धाणं नत्थि देहो, न आउ कम्मं न पाण जोणीओ**
साइ-अणंता तेसिं, ठिई जिणंदागमे भणिया ॥४८॥

**सिद्धाना नास्ति देहो नायुः कर्म न प्राणयोनयः।*
साद्यनन्ता तेपां स्थितिर्जिनेन्द्रागमे भणिता ॥४८॥

अन्वय —सिद्धाण देहो नत्थि आउ-कम्म न पाण-जोणीओ न ।
तेसिं ठिई जिणदागमे साइ अणंता भणिआ ॥४८॥

शब्दार्थ

सिद्धाण=सिद्धों के	जोणीओ=योनियाँ
देहो=देह, शरीर	तेसिं =उनकी
नत्थी=नहीं है	ठिई=स्थिति
आउ=आयु	जिणदागमे=श्री जिनेश्वर प्रभु के आगमों में
कम्म=कर्म	साइ = सादि
न=नहीं	अणंता = अनन्त
पाण=प्राण	भणिआ = कही है

गाथार्थ

सिद्धों के शरीर नहीं है, आयु कर्म नहीं है, प्राण योनिया भी नहीं हैं। उनकी स्थिति श्री जिनेश्वर प्रभु के आगमोंमें सादि—अनन्त कही है।

विवेचन

सिद्धों पर पांच द्वार इस प्रकार उतारे हैं —

शरीर की उत्पाद =शरीर ही नहीं तो इसकी उत्पाद कैसे ?

आयुष्य का प्रमाण=आयुष्य कर्म ही नहीं है तो इसके प्रमाण की बात ही क्या ?

प्राण=दस प्राणों में से एक भी नहीं। भाव ज्ञानादि भाव प्राण हैं।

योनि = जन्म ही नहीं लेना तो इसका स्थान (योनि) ही कहां से होगा।

स्वकाय स्थिति = सादि अनन्तकाल।

प्रश्न- सिद्ध जीवों के शरीर आदि क्यों नहीं हैं ?

उत्तर- मोक्ष प्राप्त कर लेने के कारण शरीर नहीं है इसलिये आयु और कर्म भी नहीं है। आयुके न होने से प्राण और योनिया भी नहीं है। प्राण के न होने से मृत्यु भी नहीं है। उनकी स्थिति सादि- अनन्त है अर्थात् जब वे लोक के अग्र भाग पर अपने स्वरूप में स्थित हुए, वह समय उनकी स्वरूप स्थिति का आदि है तथा फिर वहां से च्युत होना नहीं है इसलिये स्वरूप स्थिति अनन्त है। यह बात भी जिनेश्वर देव के आगमों में कही हुई है।

सिद्धों के शरीर की अवगाहना नहीं है। परन्तु उनकी आत्मा अधिक से अधिक ३३३$\frac{1}{3}$ धनुष्य (३३३ धनुष्य और ३२ अंगुल) और कम से कम ४$\frac{2}{3}$ हाथ प्रमाण के अवकाश मे होती है। सामान्य केवली कम से कम ३२ अंगुल के अवकाश में सिद्ध होते हैं। सिद्ध शिला ४५ लाख योजन प्रमाण है।

आचारांग सूत्र में सिद्धों के ३१ गुण इस प्रकार कहे हैं :--

वे-दीर्घ नहीं, ह्रस्व नहीं, गोल नहीं, त्र्यस्र (त्रिकोणाकार) नहीं चतुरस्र (चार कोने) नहीं, परिमंडल (वट वृक्ष के आकार) के नहीं, लाल नहीं, पीले नहीं सफ़ेद नहीं, काले नहीं, नीले नहीं, सुगन्ध वाले नहीं, दुर्गन्ध वाले नहीं, कड़वे नहीं, तिक्त

नहीं, कसायले नहीं, खट्टे नहीं, मधुर नहीं, कर्कश नहीं, कोमल नहीं, भारी नहीं, हल्के नहीं, शीत नहीं, ऊष्ण नहीं चिकने नहीं, रूखे नहीं, देहधारी नहीं क्रिया वाले नहीं, स्त्री रूप नहीं, पुरुष रूप नहीं नपुंसक नहीं—ये ३१ गुण जान लेवें।

योनियों की भयकरता

ॐकाले अणाइ निहणे, जोणि गहणम्मि भीसणे इत्थ।
भमिया भमिहिंति चिर जीवा-जिण वयण मलहता ॥ ४६ ॥

अन्वय —अणाइ निहणे काले जोणि-गहणम्मि भीसणे इत्थ जिण वयण मलहता जीवा चिर भमिया, भमिहिंति ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

अणाइ = आदि रहित अनादि
निहणे = अन्त रहित, अनन्त
काले = काल में
जोणि = योनियों द्वारा
गहणम्मि = गम्भीर, क्लेश युक्त
भीसणे = भयकर
इत्थ = इस [संसार] में

जिण वयणं = जिन वचन को
अलहता = न पाये हुए
जीवा = जीव
चिर = बहुत काल तक
भमिया = भ्रमण कर चुके हैं
भमिहिंति = भ्रमण करेंगे

ॐ काले अनादिनिधने योनीगहन भीषणेऽत्र।
भ्रान्ता भ्रमिष्यन्ति चिर जीवा जिनवचनमलभमानाः ॥४६ ॥

गाथार्थ

अनादि-अनन्त काल में योनियों द्वारा गम्भीर और भयंकर इस [संसार] में जिनेश्वर भगवान् के वचन को न पाए हुए जीव बहुत काल तक भ्रमण कर चुके हैं एवं भ्रमण करेंगे।

विवेचन

प्राण वियोग रूप मृत्यु तथा योनियां अर्थात् जन्म स्थान—ये दो संसार को गम्भीरता और भयंकरता के मुख्य कारण हैं। ऐसे भयंकर संसार मे अनादि अनन्त काल जीव भ्रमण करते हैं। इस भव भ्रमण में से बचने का उपाय जिनेश्वर देवों का उपदेश ही है। जब तक श्री जिनेश्वर प्रभु कथित आगमों का उपदेश न सुना हो, उनका सार न समझा हो तथा तदनुसार आचरण न किया हो तब तक संसार से छुटकारा नहीं है इस लिये यदि इस गंभीर और भयंकर संसार रूपी समुद्र से पार होने (छूटने) की इच्छा हो तो श्री जिनेश्वर प्रभु के उपदेश का अनुसरण करो। इसके सिवा संसार समुद्र से पार उतरने का दूसरा कोई उपाय नहीं है।

उपदेश

***ता संपइ संपत्ते, मणुअत्ते दुल्लहे वि सम्मते**
सिरि-संति-सूरि-सिट्ठे, करेह भो! उज्जमं धम्मे॥५०

---

*तत् सम्प्रति सप्राप्ते मनुष्यत्वे दुर्लभेऽपि सम्यक्त्वे।
श्रीशाति सूरिशिष्टे कुरुत भो उद्यमं धर्मे ॥५०॥

अन्वय —एसो जीव वियारो सखेव रुइण जाणणा हेऊ रुद्दाओ सुय समुद्दाओ उद्धरिओ सखित्तो ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ

एसो = यह	सखित्तो = सक्षेप से
जीव वियारो = जीव विचार	रुद्दाओ = अति विस्तृत, गभीर
सखेव रुइण = सक्षेप रुचि वालों के	सुय समुद्दाओ = शास्त्र रूपी समुद्र में से
जाणणा हेऊ = जानने के लिये	उद्धरिओ = लिया है

गाथार्थ

यह जीव विचार सक्षेप रुचि वालो (थोडी बुद्धि वाले जीवों) के जानने के लिये अति विस्तृत (गम्भीर) शास्त्र रूपी समुद्र मे से लिया है, और सक्षिप्त किया है।

विवेचन

श्री जिन आगमों में जीवों के भेद आदि विस्तार से कहे गये हैं इसलिये अल्प बुद्धि वाले लाभ नहीं उठा सकते, उन को ज्ञान कराने के लिये सक्षेप से यह "जीव विचार" श्री जिनेश्वर प्रभु कथित आगमों के अनुसार रचा गया है, इस की रचना मे अपनी अल्प बुद्धि को स्थान नहीं दिया गया।

अन्तरङ्ग-गाथ -अन्वय-शब्दार्थ गाथार्थ, विवचन और सस्कृत छाया सहित श्री जीव विचार प्रकरण सम्पूर्ण॥

जन्म तो किसी किसी को ही मिलता है। इस संसार के जाल से छूटने के साधन मात्र मनुष्य जन्म में ही प्राप्त हो सकते हैं। मनुष्य जन्म मिलने पर भी अज्ञान, मिथ्यात्व आदि होने से धर्म का समझना असम्भव है। मनुष्य जन्म से भी सम्यक्त्व प्राप्त करना अति दुर्लभ है। उचित सामग्री - मनुष्य जन्म और सम्यक्त्व भी प्राप्त हुआ है तो फिर धर्म क्यों नहीं करते। इसलिये हे भव्य जीवो! प्रमाद न करके, महापुरुषों ने जिस धर्म का सेवन किया है उसका तुम भी सेवन करो; क्योंकि विना धर्म का सेवन किये तुम जन्म मरण के जंजाल से नहीं छूट सकोगे।

सम्यक्त्व के जुदी जुदी अपेक्षाओं से बहुत अर्थ शास्त्रों में किये हैं। परन्तु सामान्य बाल जीवों की अपेक्षा से देव, गुरु, धर्म की श्रद्धा को सम्यक्त्व कहते हैं।

धर्म भी अनेक प्रकार का जगत में प्रसिद्ध है। परन्तु जो "श्री" = ज्ञान, दर्शन और "शांति" = उपशम युक्त हो, तथा "सूरि" = पूज्य पुरुषों द्वारा "सिट्ठ = उपदेश किया हुआ हो; ऐसे धर्म मे उद्यम करना चाहिये।

इस ग्रंथ के कर्ता "श्री शांतिसूरीश्वर जी महाराज हैं इस प्रकार गाथा में अपना नाम भी सूचित किया है।

ग्रंथ का उपसंहार

*एसो जीव वियारो, संखेव-रुईण जाणणा-हेऊ।
संखित्तो उद्धरिओ, रुद्दाओ सुय-समुद्दाओ ॥५१॥

---

* *एष जीवविचार. सक्षेपरुचीनां ज्ञानहेतोः।*
सङ्क्षिप्त उद्धृतो रुन्द्रात् श्रुतसमुद्रात् ॥ ५१ ॥

अन्वय ---एसो जीव वियारो सखेव रुईण जाणणा हेऊ रुद्दाओ सुय समुद्दाओ उद्धरिओ सखित्तो ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ

एसो = यह	सखित्तो = सक्षेप से
जीव वियारो = जीव विचार	रुद्दाओ = अति विस्तृत, गभीर
सखेव रुईण = सक्षेप रुचि वालों के	सुय समुद्दाओ = शास्त्र रूपी समुद्र में से
जाणणा हेऊ = जानने के लिये	उद्धरिओ = लिया है

गाथार्थ

यह जीव विचार सक्षेप रुचि वालों (थोडी बुद्धि वाले जीवों) के जानने के लिये अति विस्तृत (गम्भीर) शास्त्र रूपी समुद्र मे से लिया है, और सक्षिप्त किया है ।

विवेचन

श्री जिन आगमों में जीवों के भेद आदि विस्तार से कहे गये हैं इसलिये अल्प बुद्धि वाले लाभ नहीं उठा सकते, उन को ज्ञान कराने के लिये सक्षेप से यह "जीव विचार" श्री जिनेश्वर प्रभु कथित आगमों के अनुसार रचा गया हैं, इस की रचना में अपनी अल्प बुद्धि को स्थान नहीं दिया गया ।

अवतरण-गाथा-अन्वय-शब्दार्थ गाथार्थ, विवचन और सस्कृत छाया सहित श्री जीव विचार प्रकरण सम्पूर्ण॥

जीव विचार [परिशिष्ट]

जीवों के मुख्य भेद

१ —जीव के दो भेद हैं।

१—संसारी-कर्म सहित।

२ – सिद्ध-कर्म रहित।

२ —संसारी जीव के दो भेद हैं।

१—त्रस-चलने फिरने वाला।

२ - स्थावर-स्थिर रहने वाला।

३—स्थावर जीव के पाँच भेद हैं।

१—पृथ्वीकाय-मिट्टी, पाषाणादि के जीव।

२—अपूकाय-पानी के जीव।

३—तेऊकाय-अग्नि के जीव।

४ —वायुकाय-हवा के जीव।

५—वनस्पतिकाय—वृक्ष पौधे आदि के जीव

४—वनस्पतिकाय के दो भेद हैं।

१—प्रत्येक-जिसके एक शरीर में एक जीव होता है।

२ – साधारण-जिसके एक शरीरमें अनन्त जीव होते हैं।

५—त्रसकाय के चार भेद हैं।

१—द्वीन्द्रिय-स्पर्शनेन्द्रिय (त्वचा) और रसनेन्द्रिय (जीभ) वाले।

२—त्रीन्द्रिय-स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय तथा घ्राणेन्द्रिय (नाक) वाले।

३—चतुरिन्द्रिय स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय घ्राणेन्द्रिय तथा चक्षुरिंद्रिय (आँख) वाले।

४—पचेन्द्रिय स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्रानेन्द्रिय, चक्षुरिंद्रिय तथा श्रोत्रेन्द्रिय (कान) वाले।

६—पचेन्द्रिय जीव के चार भेद हैं।

१—नारक, २ तिर्यंच, ३—मनुष्य, और ४ देव।

७—नारक के सात भेद हैं।

१—रत्नप्रभा २-शर्कराप्रभा ३-बालुकाप्रभा, ४-पंकप्रभा, ५ धूमप्रभा, ६—तमःप्रभा, ७ तमस्तम प्रभा।

८—तिर्यंच पचेन्द्रिय जीवों के तीन भेद हैं।

१—जलचर पानी में रहने वाले।

२—स्थलचर-जमीन पर चलने वाले।

चतुष्पद, उरपरिसप, भुजपरिसर्प।

३—खेचर-आकाश में उड़ने वाले।

६ मनुष्य के तीन भेद हैं।

१-कर्मभूमिज, २ अकर्मभूमिज, ३-अन्तर्द्वीपज।

१५-कम भूमियाँ —

५ भरत ५ ऐरावत, ५ महाविदेह।

३० अकर्म भूमियाँ —

५ हिमवत, ५ हिरन्यवत, ५ हरिवर्ष, ५ रम्यक, ५ देव कुरु तथा ५ उत्तर कुरु।

५६ अंतर्द्वीप :—

चुल्लहिमवंत और शिखरी पर्वत की लवण समुद्र में चार चार दाढ़ाएं हैं। दोनों की कुल आठ दाढ़ाएं हुईं।

प्रत्येक पर सात सात अंतर्द्वीप हैं। कुल अंतर्द्वीप ५६ हुए।

१०—देवों के चार भेद है।

(१) भवनपति १०, (२) व्यंतर ८, (३) ज्योतिष्क ५, (४) वैमानिक २।

११—नारक के गोत्र:—

१घम्मा, २-वंशा, ३-सेला, ४-अंजना, ५-रिष्टा, ६ मघा, ७ -मघावती।

१२ भवनपति देव दस हैं:—

१ —असुरकुमार, २-नागकुमार, ३-सुपर्णकुमार, ४-विद्युतकुमार, ५ अग्निकुमार, ६ द्वीपकुमार, ७-उदधि-कुमार, ८-दिशिकुमार, ९-पवनकुमार, १०-स्तनित (मेघ) कुमार

१३ —व्यंतर देव आठ हैं :—

१-पिशाच, २ भूत ३-यक्ष, ४ राक्षस ५ किन्नर, ६-कि-पुरुष, ७-महोरग, ८-गंधर्व।

१४ —वाणव्यंतर देव आठ हैं : -

१-अणपन्नी, २ पणपन्नी, ३-इसीवादी, ४ भूतवादी, ५-कंदित, ६-महाकंदित, ७-कोहंड, ८ पतंग।

१५—ज्योतिष्क देव पाच है —

१-सूर, २ चन्द्र ३ ग्रह, ४नक्षत्र ५ तारे।

१६—वैमानिक देव दो हैं —

१-कल्पोपपन्न—स्वामी सेवक भाव वाले

२ कल्पातीत स्वामी सेवक भाव विना वाले।

कल्पोपपन्न

१२ देवलोक, ३ किल्विषिक ६ लोकांतिक।

१७ देवलोक बारह है —

१ सौधर्म, २ ईशान, ३ सनत् कुमार, ४—माहेन्द्र ५ ब्रह्मलोक, ६ लांतक, ७ महाशुक्र, ८ सहस्रार, ६ आनत १० प्राणत, ११ आरण, १२ अच्युत।

लोकांतिक देव नव है —

१-सारस्वत, २ आदित्य ३ वह्नि ४-वरुण, ५ गर्दतोय ६ तुषित ७ -अव्याबाध, ८ मरुत, ६-अरिष्ट।

१८—कल्पातीत देव चौदह हैं —

६ ग्रैवेयक ५ अनुत्तर

१६—ग्रैवयक नव है —

१ सुदर्शन, २ सुप्रबद्ध, ३ मनोरम, ४ सर्वभद्र, ५-सुविशाल, ६-सुमनम, ७ सौमनस ८ प्रियकर, ६ नदीकर।

(अथवा दूसरी प्रकार से इनकी पहचान)

हिट्ठिम हिट्ठिम, हिट्ठिम मज्झम, हिट्ठिम उवरिम, हिट्ठिम

मध्यम, मध्यम-मध्यम, मध्यम उवरिम; हिट्ठिम-उवरिय, मध्यम-उवरिम, उवरिम-उवरिम;

२०—अनुत्तर देव ५ हैं:—

१-विजय, २-वैजयन्त, ३-जयंत, ४-अपराजित, ५-सर्वार्थ सिद्धि।

२१—तिर्यगज्रृंभक देव दस हैं:—

१-अन्न जृंभक २-पान जृंभक, ३ वस्त्र जृंभक, ४-लेण (घर) जृंभक, ५-पृष्ट जृंभक, ६-फल जृंभक ७-पुष्प जृंभक ८-शयन जृंभक, ९-विद्या जृंभक १०-अवियत जृंभक।

२२-परमाधार्मिक देव पंद्रह हैं :—

१-अंब, २-अंबरिष, ३—श्याम, ४-शबल, ५ रुद्र ६-वपरुद्र, ७-काल, ८-महाकाल, ९-असिपत्र, १०-वण, ११-कुंभी, १२-बालुका, १३-वैतरणी, १४-खर स्वर १५-महाघोष।

२३—सिद्ध के पंद्रह भेद :—

१-जिन सिद्ध, २-अजिन सिद्ध ३-तीर्थ सिद्ध ४-अतीर्थ सिद्ध, ५-गृह लिंग सिद्ध, ६-अन्य लिंग सिद्ध, ७-स्वलिंग-सिद्ध, ८-स्त्रीलिंग सिद्ध, ९-पुरुषलिंग सिद्ध, १० नपुंसक लिंग सिद्ध, ११-प्रत्येक बुद्ध सिद्ध, १२-स्वयं बुद्ध सिद्ध, १३-बुद्ध बोधित सिद्ध, १४-एक सिद्ध, १५-अनेक सिद्ध।

२४—जीवों के स्थान —

(१) पाचों ही सूक्ष्म स्थावर चौदह राजलोक व्यापी होते हैं।

(२) बादर एकेन्द्रिय जोव तथा पचेन्द्रिय जीव तीनों ही लोकों में होते हैं।

(३) विकलेन्द्रिय जीव मात्र तिर्छालोकमे ही होते हैं।

(४) बादर पृथ्वी, अप् और वनस्पतिकाय बारह देवलोक एव सात नरक भूमियों मे भी होते हैं। तेउकाय तिर्छालोक मे मात्र मनुष्य लोक मे ही होती है। वायुकाय सम्पूण लोक मे होता है।

(५) देवलोकों की बावडियों मे मत्स्यादि जलचर जीव नहीं परन्तु उनके आकार वाले देव होते हैं। ग्रैवेयक आदि में बावडियां ही नहीं हैं इसलिये वहां मत्स्यादि जलचर जीव नहीं हैं।

२५—स्थावर जीवों के आकार —

(१) पृथ्वीकाय का आकार मसूर जैसा।

(२) अप्काय का आकार बुदबुदे जैसा।

(३) तेउकाय का आकार सूइयों के समूह जैसा।

(४) वायु का आकार ध्वजा जैसा।

(५) वनस्पतिकाय का आकार विविध प्रकार का है।

जीव के ५६३ भेदों की उत्पत्ति अलग अलग रीति से इस कोष्टक में बतलाई गई है।

जीव के भेद	नारकी के भेद-१४	तिर्यंच के भेद-२८	मनुष्य के भेद-३०३	देवता के भेद-१९८	सर्व संख्या ५६३
भरतक्षेत्र मे	०	४८	३	०	५१
महाविदेह मे	०	४८	३	०	५१
जम्बूद्वीपमें	०	४८	२७	०	७५
लवण समुद्र में	०	४८	१६८	०	२१६
धातकीखड में	०	४८	५४	०	१०२
कालोदधि समुद्र में	०	४८	०	०	४८
अर्द्ध पुष्करवर द्वीपमें	०	४८	५४	०	१०२
अधोलोक में	१४	४८	३	५०	११५
नंदीश्वर द्वीप आदिमें	०	४६	०	०	४६
नदीश्वर समुद्र आदिमें	०	४६	०	०	४६
तिरछालोक में	०	४८	३०३	७२	४२३
अधोलोक में	०	४६	०	७६	१२२
मेरुगिरि में	०	४८	०	०	४८
ढाई द्वीप में	०	४८	३०३	०	३५१
१२ देवलोक मे	०	२०	०	४८	६८
९ ग्रैवेयक मे	०	१४	०	१८	३२
लोकके अन्तभागमें	०	१२	०	०	१२
अधो ग्राम में	०	४८	३	०	५१
मुट्ठी में	०	१२	०	०	१२

नदीश्वर द्वीप और समुद्र आदिमें-बादर तेउकाय पर्याप्ता और अपर्याप्ता के बिना तिर्यंच गति के-४६ भेद।

१२ देवलोक में—बादर तेउकाय पर्याप्ता और अपर्याप्ता बिना एकेन्द्रिय के—२० भेद।

६ ग्रैवेयक में—पांच सूक्ष्म बादर पृथ्वी और वायु ये सात पर्याप्ता और अपर्याप्ता—१४ भेद

लोक के अन्त भाग में तथा गुफ्लो में—पांच सूक्ष्म तथा बादर वायु-ये छ पर्याप्ता और अपर्याप्त—१२ भेद

भरत, महाविदेह, अधोलोक और अधो ग्राम में—
गर्भज पर्याप्ता-अपर्याप्ता तथा सम्मूर्छिम अपर्याप्ता मनुष्य—३ भेद।

जम्बद्वीप में भरत ऐरवत-महाविदेह तथा छ युगलियों के क्षेत्र मिलकर ९ क्षेत्रों में—२७ भेद।

धातकी और पुष्करवरद्वीप में जम्बद्वीप से दुगने क्षेत्र-इनके गर्भज पर्याप्ता अपर्याप्ता तथा सम्मूर्छिम अपर्याप्ता मनुष्य कुल—५४ भेद।

लवण समुद्र में—५६ अन्तद्वीपों में गर्भज पर्याप्ता अपर्याप्ता तथा सम्मूर्छिम अपर्याप्ता मनुष्य-कुल १६८ भेद।

अधोलोकमें—१० भवनपति तथा १५ परमा-धार्मिक कुल२५ इनके पर्याप्ता तथा अपर्याप्ता मिलकर ५० भेद देवके होते हैं।

तिरछे लोक में-८ व्यंतर, ८ वाणव्यंतर, १० तिर्यग् जृंभक ५ चर तथा ५ स्थिर ज्योतिष्क, कुल ३६, इनके पर्याप्ता और अपर्याप्ता मिलकर ७२ भेद देवके होते हैं।

पांच द्वारों का संक्षिप्त विवरण

२७ वीं गाथा से जीवके हरेक भेद पर नीचे के पांच द्वार बतलाये हैं :—

१-अवगाहना द्वारमें—किस जीवके शरीरकी ऊंचाई (लम्बाई) कितनी होती है सो बतलाया है।

२-आयुष्य द्वार में—किस जीव की आयु कितनी होती है सो बतलाया है।

३-स्वकाय स्थिति द्वारमें—कौन जीव अपनी जातिमें कितनी बार उत्पन्न होता है सो बतलाया है।

४-प्राण द्वार में—किस जीवको (५ इंद्रियां, श्वासोश्वास, आयु, तथा मन, वचन और काय बल इन) दस प्राणों में से कितने और कौन कौन से प्राण होते हैं ? सो बतलाया है।

५-योनि द्वार में—किस किस जीव के उत्पत्ति स्थान कितने प्रकार के होते हैं ? इस की संख्या बतलाई है।

—

जीव भेदों पर पांच द्वार कोष्टक

क्र०	जीव भेद	अवगाहना	आयुष्य	स्वकाय, स्थिति	प्राण	योनियां
	संसारी जीव					
	स्थावर					
	पृथ्वीकाय					
१	बादर	अंगुल का असंख्या तवाँ भाग	२२००० वर्ष	असंख्य उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी	कुल ४-स्पर्शेन्द्रिय आयुष्य, श्वासो-श्वास, कायबल	७ लाख
२	सूक्ष्म	,,	अंतर्मुहूर्त	,,	,,	
	अप्काय					
३	बादर	,,	७००० वर्ष	,,	,,	७ लाख
४	सूक्ष्म	,,	अंतर्मुहूर्त	,,	,,	

	तेउकाय-					
५	बादर	,,	तीन अहोरात्र	,,	,,	७ लाख
६	सूक्ष्म	,,	अतर्मुहूर्त	,,	,,	
	वायुकाय-					
७	बादर	,,	३००० वर्ष	,,	,,	७ लाख
८	सूक्ष्म	,,	अन्तर्मुहूर्त		,,	
	वनस्पतिकाय-					
	साधारण					
९	बादर	,,	,,	अनन्त उत्सर्पिणी अवसर्पिणी	,,	१४
१०	सूक्ष्म	,,	,,	,,	,,	
	प्रत्येक-					
११	बादर	१००० योजन से अधिक	१०००० वर्ष	असख्य उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी	,,	१० लाख

	त्रस विकलेन्द्रिय-					
१२	द्वीन्द्रिय	१२ योजन	१२ वर्ष	संख्यात वर्ष	कुल ६-स्पर्शेन्द्रिय रसेन्द्रिय, आयुष्य, श्वासोच्छ्वास वचन बल, कायबल	२ लाख
१३	त्रीन्द्रिय	३ कोश	४९ दिन	,,	कुल ७-स्पर्शेन्द्रिय रसेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास आयुष्य, वचनबल, और कायबल	२ लाख
१४	चतुरिन्द्रिय	१ योजन	६ मास	,,	कुल ८-स्पर्शेन्द्रिय रसेन्द्रिय घ्राणेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय आयुष्य श्वासोच्छ्वास वचनबल कायबल	२ लाख
	पञ्चेन्द्रिय- नारकी-					
१५	रत्नप्रभा (१)	७ धनुष ७८ अंगुल	१ सागरोपम	×	कुल १० पाँच इन्द्रियाँ, तीनबल, आयुष्य श्वासोच्छ्वास	४ लाख
१६	शर्कराप्रभा (२)	१५ ,, ६० ,,	३ सागरोपम	×	,,	

१७	बालुकाप्रभा (३)	३१ ,, २४ ,,	७ सागरोपम	×	,,	
१८	पङ्कप्रभा (४)	६२ , ४८ ,,	१० सागरोपम	×	,,	
१९	धूमप्रभा (५)	१२५ धनुष्	१७ सागरोपम	×	,,	४ लाख
२०	तमःप्रभा (६)	२५० धनुष्	२२ सागरोपम	×	,,	
२१	तमस्तमःप्रभा (७)	५०० धनुष्	३३ सागरोपम	×	,,	
	तिर्यंच- गर्भज					
२२	जलचर	१००० योजन	करोड़ पूर्व	७ भव	,,	
	स्थलचर-					
२३	चतुष्पद्	६ कोस	३ पल्योपम	७-८ भव	,	
२४	उरपरिसर्प	धनुष पृथक्त्व	प०पा पम का अ- संख्यातवांभाग	७ भव	,,	४ लाख
२५	भु ·· रसर्प	कोस पृथक्त्व	क्रोड़ पूर्व	,,	,,	
२६	खेचर	१००० योजन	पल्यो०असंख्यतवांभाग	७-८ भव	,,	

	सम्मूर्छिम-					
२७	जलचर	१००० योजन	,,	७ भव	मन बिना ९ प्राण	४ लाख
	स्थलचर-					
२८	चतुष्पद	कोस पृथक्त्व	८४००० वर्ष	,,	,,	
२९	उरपरिसर्प	योजन पृथक्त्व	५३००० वर्ष	,,	,,	
३०	भुजपरिसर्प	धनुष पृथक्त्व	४२००० वर्ष	,,	,,	
३१	खेचर	धनुष पृथक्त्व	७२००० वर्ष	,,	,,	
	मनुष्य					
३२	गर्भज	३ कोस	३ पल्योपम	७ ८ भव	१० प्राण	१४ ,,
३३	सम्मूर्छिम	अंगुलका असंख्या- सवाँ भाग	अन्तर्मुहूर्त	,,	मनबल, वचन बल बिना ८ प्राण अथवा मन बल, वचन बल, श्वासोश्वास बिना ७ प्राण	
	देवता-					
	भवनपति					

६२	लांतक (६)	५ हाथ	१४ सागरोपम	×		की मिला कर चार (४) लाख
६३	महाशुक (७)	४ हाथ	१७ सागरोपम	×	,,	
६४	सहस्रार (८)	४ हाथ	१८ ,,	×	,,	
६५	आनत (९)	३ हाथ	१९ ,,	×	,,	
६६	प्राणत (१०)	३ हाथ	२० ,,	×		
६७	आरण (११)	३ हाथ	२१ ,,	×	,,	
६८	अच्युत (१२)	३ हाथ	२२	×	,,	
	कल्पातीत-ग्रैवेयक					
६९	सुदर्शन (१)	२ हाथ	२३ ,,	×		
७०	सुप्रतिबद्ध (२)	२ हाथ	२४ ,,	×	,,	
७१	मनोरम (३)	२ हाथ	२५ ,,	×	,,	
७२	सर्वतोभद्र (४)	२ हाथ	२६ ,,	×	,,	
७३	सुविशाल (५)	२ हाथ	२७ ,,	×	,,	
७४	सुमनस (६)	२ हाथ	२८ ,,	×	,,	

७५	सौमनस (७)	२ हाथ	२९	"	×	"
७६	प्रियकर (८)	२ हाथ	३०	"	×	"
७७	नन्दीकर (९)	२ हाथ	३१	"	×	"
	अनुत्तर-वैमानिक					
७८	विजय (१)	१ हाथ			×	"
७९	वैजयंत (२)	१ हाथ			×	"
८०	जयंत (३)	१ हाथ			×	"
८१	अपराजित (४)	१ हाथ	३१ से ३३ सागरोपम		×	"
८२	सर्वार्थसिद्धि (५)	१ हाथ	३३ सागरोपम		×	"
८३	सिद्ध	नहीं	नहीं		सादि अनन्त	नहीं

पाँच द्वारों का संक्षेप

१—शरीर की ऊँचाई।

१-अंगुल के असंख्यातवें भाग की ऊँचाई वाला
- बादर और सूक्ष्म—
- पृथ्वीकाय,
- अप्काय,
- तेउकाय
- वायुकाय
- साधारण वनस्पतिकाय
- समूर्छिम मनुष्य

२ एक हाथ की ऊँचाई वाला
- पाँच अनुत्तर देव

३-दो हाथ की ऊँचाई वाला
- नव ग्रैवेयक देव

४-तीन हाथ की ऊँचाई वाला
- ९ वें से १२ वें देवलोक के देव

५-चार हाथ की ऊँचाई वाला
- महाशुक्र के देव
- सहस्रार के देव

६-पाँच हाथ की ऊँचाई वाला
- ब्रह्मलोक के देव
- लांतक के देव
- तीसरे किल्विषिक देव
- ९लोकांतिक देव

७-छः हाथ की ऊँचाई वाला
- सनत्कुमार के देव
- माहेन्द्र के देव
- दूसरे किल्विषिक देव

८-सात हाथ की ऊँचाई वाला
- १० भवनपति देव
- १५ परमाधार्मिक देव
- ८ व्यंतरदेव
- ८ वाणव्यंतर देव
- १० तिर्यक् जृंभक देव
- ५ चर ज्योतिष्क देव
- ५ स्थिर ज्योतिष्क देव
- १ सौधर्म देव लोक के देव
- १ ईशान देव लोक के देव
- १ पहले किल्विषिक देव

९-नारकों की ऊँचाई
- पहली नरक ७ धनुष् ७८अंगुल
- दूसरी नरक १५ धनुष् ६०अंगुल
- तीसरी नरक ३१। धनुष्
- चौथी नरक ६२॥ धनुष
- पाँचवीं नरक १२५ धनुष्
- छठी नरक २५० धनुष
- सातवीं नरक ५०० धनुष्

१०-धनुप पृथक्त्व ऊँचाई वाला

गर्भज और सम्मूर्छिम—

खेचर

समूर्छिम –

भुजपरिसर्पं

११-तीन कोस ऊँचाई वाला

तेइन्द्रिय

गर्भज मनुष्य

१२-छः कोस ऊँचाई वाला

गर्भंज—

चतुष्पद

१३-कोस पृथकत्व ऊँचाई वाला

गर्भंज—

भुजपरिसर्प

समूर्छिम—

चतुष्पद

१४-एक योजन ऊँचाई वाला

चउरिन्द्रिय

१५-१२ योजन ऊँचाई वाला

द्वीन्द्रिय

१६-योजन पृथक्त्व ऊँचाई वाला

सम्मूर्छिम—

-उरपरिसर्प

१७-१००० योजन ऊँचाई वाला

गर्भज—

उरपरिसर्प

गर्भज तथा संमूर्छिम-

जलचर

१८-१००० योजन से अधिक ऊँचाई वाला

बादर-प्रत्येक-

वनस्पति

२—आयुष्य

१-अंतर्मुहूर्त तकको आयुष्यवाला

सूक्ष्म—अप्काय

तेऊकाय

वायुकाय

पृथ्वीकाय

बादर और सूक्ष्म—

साधारण वनस्पति काय

संमूर्छिम मनुष्य

२-३अहोरात्र की आयुष्य वाला

तेऊकाय

३ ४९ दिनों की आयुष्य वाला
तेइन्द्रिय
४-छ महीने की आयुष्य वाला
चतुरिन्द्रिय
५ १२ वर्ष की आयुष्य वाला
द्वीन्द्रिय
६ ३००० वर्ष की आयुष्य वाला
बादर वायुकाय
७-७००० वर्षकी आयुष्य वाला
बादर अपूकाय
८-दस हजार वर्ष की आयुष्य-
वाला
बादर प्रत्येक वनस्पतिकाय
जघन्य आयुष्यवाले—
देवता और नारकी
९-बाईस हजार वर्ष आयुष्य वाला
बादर पृथ्वीकाय
१० ४२००० वर्षकी आयुष्यवाला
समूर्छिम भुजपरिसर्प
११-५३००० वर्ष की आयुष्यवाला
समूर्छिम उरपरिसर्प
१२-७२००० वर्षकी आयुष्यवाला
समूर्छिम खेचर

१३ ८४००० वर्षकी आयुष्यवाला
समूर्छिम चतुष्पद
१४-क्रोड पूर्व वर्षकी आयुष्यवाला
समूर्छिम और गर्भज—
जलचर
गर्भज—
उरपरिसर्प
भुजपरिसर्प
१५-पल्योपम के असंख्यातवें
भाग की आयुष्य वाला
गर्भज—
पक्षी-खेचर
१६-तीन पल्योपमकी आयुष्य
वाला
गर्भज—
मनुष्य
चतुष्पद
१७-३३ सागरोपम की आयुष्य
वाला
देवता
और
नारकी

३—स्वकाय स्थिति

१-स्वकाय-स्थिति रहित	तेइन्द्रिय
देवता और नारक	चउरिंद्रिय
२-सात-आठ भव की स्वकाय स्थिति वाला	४-असंख्य उत्सर्पिणी अवसर्पिणी तक की स्वकाय स्थिति वाला-
चेन्द्रिय —	पृथ्वीकाय
तिर्यंच	अपूकाय
और	तेउकाय
मनुष्य	वायुकाय
	प्रत्येक वनस्पतिकाय
३-संख्यात वर्ष की स्वकाय स्थिति वाला	५-अनन्त उत्सर्पिणी अवसर्पिणी तक स्वकाय स्थिति वाला—
द्वीन्द्रिय	साधारण वनस्पतिकाय

४—प्राण

१-चार प्राणों वाला	३-सात प्राण वाला
पृथ्वीकाय	तेइन्द्रिय
अपूकाय	सम्मूर्छिम मनुष्य
तेउकाय	४-आठ प्राणों वाला
वायुकाय	चउरिंदिय
वनस्पतिकाय	संमूर्छिम मनुष्य
२-छः प्राण वाला	५-नव प्राणों वाला
द्वीन्द्रिय	संमूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंच

६-दस प्राणों वाला
पंचेन्द्रिय—
देव
नारक
गर्भज—
मनुष्य
और
तिर्यच

५—योनियों का प्रमाण

१-दो लाख योनियों वाला
द्वीन्द्रिय
त्रेइन्द्रिय
चउरिंद्रिय
२-चार लाख योनियों वाला
देवता
नारक
तिर्यच पंचेन्द्रिय
३-सात लाख योनियों वाला
पृथ्वीकाय
अप्काय
तेउकाय
वायुकाय
४-दस लाख योनियों वाला
प्रत्येक वनस्पतिकाय
५ १४ लाख योनियों वाला
साधारण—
वनस्पतिकाय
और
मनुष्य

सिद्धों पर पांच द्वार

इनको—
१—शरीर नहीं
२—आयुष्य नहीं
३—सादि-अनन्त काल तक स्वस्थान स्थिति
४—प्राण नहीं
५—योनियां नहीं

कुछ मापों और संख्याओं की परिभाषाएं

माप

अंगुल के असंख्य भाग = अंगुली का असख्यातवां भाग—अर्थात सूई की नोक पर जितना भाग आवे उसका भी असख्यातवा भाग

६ अंगुल की = १ मुट्ठी

२ मुट्ठी का = १ बेंत (बालिश्त), बित्ता

२ बेंत का = एक हाथ

२ हाथ का = एक दंड

२ दंड का = १ धनुष

२ से ९ धनुप का = धनुष् पृथक्त्व

२००० धनुष का = एक कोस

२से९ कोस का = कोस पृथक्त्व

४ कोस का = १ योजन

२ से ९ योजन का = योजन पृथक्त्व

असख्य योजन का = १ राजलोक

१४ राजलोक का = १ लोक

संख्याएं

लोक प्रसिद्ध संख्याएं

१ = एकम

१० एकम = १ दशक

१० दशक = १ सौ

१० सौ = १ हजार

१० हज़ार = १ दस हज़ार

१०० हजार = १ लाख

१०० लाख = १ करोड़ वगैरह परार्ध तक

जैन शास्त्रीय संख्याएं

सख्याता संख्य — ३ प्रकारका है; २से लेकर अमुक प्रकारके माप तक संख्यात कहा जाता है।

असख्यात असख्य — ६ प्रकार का है; संख्यात से असंख्य गुणा अधिक है।

अनन्त = ६ प्रकारका है; असंख्य से अनन्त गुणा अधिक है।

समय (वक्त)

अविभाज्य सूक्ष्म काल = १ समय

असंख्य समय = एक आवलिका

१६७७७२१६ से कुछ अधिक आवलियोंका } = १ मुहूर्त

२ से ९ समय | १ समय पृथक्त्व | १ जघन्य अंतर्मुहूर्त

१ समय न्यूनमहूर्त = १ उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त

२ घड़ी= | ४८ मिनट | = १ मुहूर्त

१५ मुहूर्त = १ दिन

१५ मुहूर्त = १ रात्रि

३० मुहूर्त= | ६० घड़ी } १ अहोरात्र

१५ अहोरात्र = १ पक्ष

२ पक्ष = १ मास

२ मास = १ अयन

२ अयन = १ वर्ष

५ वर्ष = १ युग

७०५६०००० क्रोड़ वर्ष का | १ पूर्व

पल्योपम = एक योजन गहरे एक योजन लम्बे और एक योजन चौड़े कुए में युगलिया मनुष्यों के सात दिनके जन्मे हुए बालरूपे एक एक बालके सात बार आठका आठसे गुणा[२०९७१५२] किये हुए अति सूक्ष्म टुकड़ों को ठाँस ठाँस कर इस प्रकार भरें जो कि अग्निसे जले नहीं, जलसे गले नहीं, चक्रवर्तीकी सेनाके ऊपर चलने से दबे नहीं। इसमें से सौ सौ वर्ष में एक एक खंड निकालें। जितने काल में वह कुआ खाली हो उतने काल को "बादर अद्धा पल्योपम" कहते हैं।

और इन्हीं बालों के असंख्य सूक्ष्म टुकड़े काट कर सौ सौ वर्ष में एक टुकड़ा निकालें तो वह कुआ जितने वर्षों में खाली हो उतने काल को "सूक्ष्म अद्धा पल्योपम" कहते हैं।

उद्धार, अद्धा और क्षेत्र पल्योपम के सूक्ष्म और बादर भेद गिनने से ६ प्रकार के कल्पोपम कहे हैं। यहाँ अद्धा पल्योपम की ही आवश्यकता है इसलिये इसीका स्वरूप समझाया है।

दसकोड़ाकोड़ी (१०००००००×१०००००००×१०=१००००००० ००००००००) पल्योपम का एक सागरोपम।

दस कोड़ाकोड़ी सागरोपम को=१ उत्सर्पिणी अथवा अवसर्पिणी।

२० कोड़ाकोड़ी सागरोपम=एक काल चक्र।

पर्याय शब्द

पुढवी, पुढवि=पृथ्वी, पृथ्वीकाय

जल, उदग, आउ=पानी, अप्काय

जलण, अगणि, तेऊ=अग्निकाय, तेजकाय, अग्नि, तेउकाय

वाय, वाऊ=वायु, वायुकाय, हवा

साहारण, अनतकाय=साधारण वनस्पतिकाय

भेय, विगप्प=विकल्प, प्रकार, भेद

पत्तेय, पत्तेय-तरु, पत्तेय-रुक्ख, तरु-गण = प्रत्येक वनस्पतिकाय

समास, सखेव=संक्षेप

सखित्तो=संक्षेप किया हुआ

नेया, नायव्वा, वोधव्वा, मुणेयव्वा = जानना चाहिये, जानने योग्य

इच्चाइ, इच्चाइणो=इत्यादि, वगैरह

हुंति, हवंति=होते हैं, हैं

होई, हवइ=होते हैं, हैं

आइ, आइआ, पमुह=वगैरह

सुअ, सुत्त=श्रुत, सूत्र-सिद्धान्त, आगम

आऊ ठिइ, आउस=आयुष्य

सरीर, ओगाहणा, उच्चत्तं, देह = शरीर, शरीरकी ऊंचाई

नेरइया, नारय=नारक जीव

तिरिय, तिरिक्ख, तिरि=तिर्यंच जीव

मणुस्स, मणुअ=मनुष्य

देव, सुर=देवता, देव

संमुच्छिम=संमूर्च्छिम जन्म वाला

गब्भय=गर्भ से जन्म वाला

जीव, जीअ=जीव

भणिया, समक्खाया=कहा हुआ है

पमाण, माण, मित्त=प्रमाण, माप

परम, उक्कोस, उक्किट्ठ = उत्कृष्ट, अधिक से अधिक
नवर, तु उ, पुण = परन्तु
अणुक्कमसो, कमेण = अनुक्रम से, क्रमश
कम हीण = कम
जहन्न = कम से कम
पलिय, पलिओवम = पल्योपम
जयति = जीते हैं।
पुण, च, य अ = पुन और, एव तथा
इत्थ = यहाँ
विसेस = विशेष
विसेस सुत्त = बड़े सूत्र, बड़े शास्त्र
विगल, विगलेंदिय = एक से अधिक और पाँच से कम इन्द्रियोंवाला जीव द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय।

भव = ससार, अवतार, जिन्दगी
ग्यर = इतर प्रथम से भिन्न, दूसरा
सपिंडिय = इकट्ठा किया हुआ, जोड मिला कर
गहण = गम्भीर
भीम, भीसण = भयकर
रुद्द = गम्भीर, समझ मे न आ सके
नर-लोअ = नर लोक ढाई द्वीप, जिस में मनुष्य रहे ऐसा क्षेत्र, मनुष्य लोक
खेचर पक्खी, खगर = खेचर, पक्षी
जलयर, जलचारी = जलचर
लोअ, लोग = लोक
उरगा, उरपरिसप्पा = उरपरिसर्प
भुयचारी भुयपरिसप्पा भुयगा | भुजपरिसर्प

पाँच प्रकार के स्थावरों में जीव की सिद्धि

इस जीवविचार म स्थावर और त्रस दो प्रकार के जीवों का वर्णन है। शरीर में जीव होने की पहचान सामान्यतया चैतन्य

शक्ति है। इसी से सर्व साधारण जान सकते हैं कि यह प्राणी सजीव है। मनुष्य, पशु, पक्षी, मक्खी आदि त्रस जीव तो सुख अथवा दुःख के संयोगों में अपनी इच्छा, उद्देश, इरादे-समझ पूर्वक चलते, फिरते भागते-दौड़ते, एक स्थान से दूसरे स्थान पर आते जाते, खाते-पीते रोते-हँसते दिखलाई देते हैं इस लिये वे सजीव हैं, यह सरलता पूर्वक समझ में आ जाता है। तथा जब मर जाते हैं, उनमें से जीव निकल गया होता है तब सब लोग उसे मुर्दा—निर्जीव स्वीकार भी कर लेते हैं।

क्योंकि त्रस का अर्थ है 'त्रसन शक्ति वाला"। अर्थात् स्फुरायमान चैतन्य शक्ति वाले जीव का नाम त्रस जीव है। तथा जो जीव मूढ़ चैतन्य है, जिसमें चैतन्य स्पष्ट स्फुरायमान मालूम नहीं होता उसका नाम स्थावर जीव है।

जिस प्रकार दूधमें घी, तिलों में तैल--सामान्य बुद्धि वालों को भी समझाना सरल है वैसे स्थावर में जीव है या नही यह समझाना सरल नहीं—कठिन है। तथापि नीचे लिखे अनुमानों से इनमे भी चैतन्य शक्ति है इसे स्पष्ट करनेका प्रयत्न किया जाता है।

पुद्गल परमाणु अति सूक्ष्म हैं, उन पुद्गल परमाणुओंका समूह शरीर रूप होकर इन्द्रिय गोचर हो जाता है। शरीर जीव के बिना बन नहीं सकता; क्योंकि जीव के बिना कोई भी शरीर बनानेमें समर्थ नहीं है और न जीव सिवाय कोई शरीर बांधने के परमाणुओं को खेंच ही सकता है। जीव की सहायताके बिना परमाणु इन्द्रियगोचर नहीं हो सकते। कहने का सारांश यह

है कि जगत मे जितने भी पदार्थ दृष्टि गोचर होते हैं वे सब किसी भी समय, किसी भी जीव के द्वारा पुद्गल परमाणुओं के समूह को शरीर रूप बनाने के बाद ही दृष्टि गोचर हो सकते हैं। इस लिये पृथ्वी, पानी, अग्नि वायु, और वनस्पति आदि के शरीर जीव द्वारा ही बने हुए होते हैं।

१—वनस्पति मे जीव सिद्धि—

(१) जिस प्रकार मनुष्य पाचों इन्द्रियों द्वारा शब्दादि का ज्ञान करते हैं उसी प्रकार वनस्पतिकाय जीव एकेन्द्रिय वाले होते हुए भी पांचों इन्द्रियों के विषयो को अनुभव करते जान पडते हैं। क्योंकि-एकइन्द्रिय जीवोंके बाह्य इन्द्रिय मात्र एक ही होती है किन्तु भावेन्द्रियां तो पाचों ही होती हैं।

(२) जाग्रत दशा, राग-प्रेम हर्ष शोक, लोभ, लज्जा, भय, मैथुन क्रोध, मान माया, आहार, जन्म वृद्धि, मरण, रोग ओघ सज्ञा, आदि मे इन जीवों को मनुष्यों के समान ही अनुभव होता है।

(३) बाल्य, यौवन और वृद्ध अवस्था-ये तीनों अवस्थाए भी इन जीवों के मनुष्य के समान ही होती हैं। जिस प्रकार मनुष्य की आयु नियत होती है वैसे ही वनस्पति की आयु भी नियत होती है।

(४) गत जन्म के सस्कारों के कारण वनस्पति जीवों में पांचों इन्द्रियों के विषयों की शक्तियां इस प्रकार दिखलाई पडती हैं—

जिस प्रकार पक्षियोंम सुघरो नामक पक्षी उत्तम घर-घोसला

बनाने में कुशल हैं। तोता, मैना, कोयल आदि मीठे शब्द बोलने में कुशल हैं। चतुरिंद्रियों में भ्रमर बांस में छेद करने में जैसे कुशल है; वैसे अन्य कोई भी नहीं होता। इसी प्रकार वनस्पति जीव दूसरे एकेन्द्रिय जीवों की अपेक्षा पांचों इन्द्रियों के विषयों को ग्रहण करने की शक्ति धारण करने में आश्चर्य कारक कुशलता रखते हैं।

१-शब्द ग्रहण शक्ति—कंदल और कुंडल आदि वनस्पतियां मेघ शक्ति से पल्लवित होती हैं।

२-रूप ग्रहण शक्ति—बेलें और लताएं; उन्हें सहारा देने वाले भींत, स्तंभों आदि के आश्रय को वेष्टित करते हुए बढ़ती हैं।

३-सुगन्ध ग्रहण शक्ति—कुछ वनस्पतियां धूप आदि की सुगन्धी से वृद्धि पाती हैं।

४-रस ग्रहण शक्ति—ऊख (गन्ना) आदि वनस्पतियां भूमि में से मीठा रस अधिक चूसती हैं।

५-स्पर्श ग्रहण शक्ति—कुछ वनस्पतियां ऐसी होती हैं कि जिनको छूने से वे मुर्झा (संकुचित हो) जाती हैं।

६-निद्रा और जागृत अवस्था—पुंआड आदि वृक्ष, चन्द्र विकाशी, सूर्य विकाशी आदि कमल, अंभारी के फूल इत्यादि अमुक समय संकुचित हो जाते हैं और अमुक समय खिलते हैं।

७-राग और प्रेम —झांझर की झंकार सहित स्त्री का

पग लगते ,से अशोक, बकुल कटहल आदि वृक्ष फलते हैं।

८ हर्ष —कितनी ही वनस्पतियों के अकाल मे ही फूल, फल,खिल पडते हैं।

९-लोभ—सफेद आक, पलाश बिलीवृक्ष आदि की जड़ें (मूल) भूमि मे रहे हुए धन को निधियों पर फैल कर रहती हैं।

१०-लज्जा—लज्जावती (छुईमुई) पौधे मे लज्जा सङ्कुचन प्रत्यक्ष दिखलाई पडती है।

११-भय—यह भी छुइ मुई के पौधा मे ज्ञात होता है।

१२-मैथुन—युवा स्त्री के मुख का ताम्बोल (पान) छांटने से आलिंगन से, हावभाव दिखलाने से, या कटाक्ष से कई वृक्ष तुरत फलते हैं। पपीते आदि के नर वृक्ष तथा मादा वृक्ष होते हैं। यदि नर का पराग मादा फूल मे पड़े तो फल आता है इसलिये ,मादा वृक्ष के समीप नर वृक्ष,बोना पडता है। कुछ पानी के ,फूलों में से नर फूल का पराग ऊपर से पानी में गिरते ही मादा फूल पानी से बाहर निकल कर नर पराग चूस कर अन्दर वापिस चले आते हैं। इत्यादि मैथुन संज्ञा के प्रमाण हैं।

१३-क्रोध—कोकनद का वृक्ष हुकार की ध्वनि करता है।

१४-मान—रुदती बेल पानीको बूंदें झरती हैं क्योंकि इससे स्वर्ण सिद्ध होता है। जो पानी की बूंदें झरती हैं उससे उत्प्रेक्षा की जाती है कि—"मेरे विद्यमान होते हुए जगत म निर्धन लोगों की संभावना हो कैसे हो सकती है।

१५ माया—कई लताएं अपने फलों को पत्तों के नीचे ढक रखने का प्रयत्न करती हैं।

१६–आहार—पानी, खाद आदि आहार मिलता रहे तो ही वनस्पति बढ़ती है। कई वनस्पतियाँ—मनुष्य, जलचर आदि के मांस, रुधिर अथवा कीड़े पतंगों का आहार भी करती हैं। यदि न मिले तो सूखकर मर जाती हैं।

१७–जन्म—बोने से वनस्पति उगती है। चौमासे में अनेक प्रकार की वनस्पतियाँ एकाएक चारों तरफ उग आती हैं। इसलिये जन्म है।

१८-वृद्धि—हरेक वनस्पति अंकुर के बाद डाल तथा पत्तों से वृद्धि प्राप्त करती है।

१९–मृत्यु—आयुष्य पूर्ण होने पर अथवा हिम आदि का आघात लगने से सूख कर मृत्यु प्राप्त करती है।

२०–रोग—जिस प्रकार मनुष्यों को पांड, सूजन, उदर वृद्धि आदि अनेक रोग होते हैं और औषधोपचार से स्वास्थ्य लाभ होता है, वैसे ही वनस्पति को ऐसे अनेक रोग हवा, पानी, आहार आदि के विकार से होते हैं तथा उपरोक्त औषधोपचार से स्वास्थ्य लाभ भी प्राप्त कर लेती है। बगीचे के माली को इस विषय का भली भांति ज्ञान होता है।

२१-ओघ संज्ञा—वेलें चाहे किसी स्थान पर उगी हों किन्तु चढ़ने के लिये वृक्ष, वाड़ आदि की तरफ स्वतः अपने

आप मुड़ जाती हैं, उसके ऊपर चढ़ जाती है तथा लिपट जाती हैं। यह ओघसंज्ञा है।

२२—बेलें फल आने के बाद सूखना आरम्भ कर देती हैं। कुछ पौधे फल आने पर सूखने लगते हैं, कई वृक्ष अमुक वर्ष फल देकर सूखने लगते हैं।

२३ वनस्पति जीवों के शरीर की रचना—जगत में अनेक प्रकार की वनस्पतियां हैं किसी का मूल मात्र विकसित होता है। केले आदि में पत्तों का विकास होता है इसका धड़ भी पत्तों का ही बना हुआ होता है। इमली के पत्ते बारीक होते हैं किन्तु इसकी लकड़ी मजबूत होती है। सागवान का धड़ मोटा होता है किन्तु आक का धड़ पतला होता है। थोहर बड़ आदि के पत्ते विकसित होते हैं। ऊख बांस आदि सीधे होते हैं। खरबूज, तूंबड़ी की बेलें बहुत पतली होती हैं किन्तु इनके फल खूब बड़े होते हैं। बड़ वृक्ष खूब बड़ा होता है किन्तु उसका फल और बीज बहुत छोटे होते हैं। किसी किसी वनस्पति के बीज बीज बड़े होते हैं। आम के फल मीठे होते हैं और किंपाक आदि के विषैले होते हैं। वल्कल आदि में छाल का विकास होता है और नारियल आदि कई वृक्षों की छाल बिल्कुल खुरदरी ही नहीं। गंध, रंग, स्वाद, स्पर्श किसी में कैसे किसी में कैसे अर्थात् भिन्न भिन्न होते हैं। किसी वन-स्पति में लज्जा होती है तो कोई दिमक भी होती है। लोभी कामी, क्रोधी भी होती हैं इस प्रकारसे अनेक प्रकारकी विविधता वनस्पतियों में पाई जाती हैं।

२४-शरीर रचना की विविध विचित्रता—मनुष्यों के समान वनस्पति की शरीररचना भी विचित्र होती है नारियल की चोटी (शिखा) मुंह, दो आखें, होती हैं। बबूल आदि के थड़ में आयु के अनुसार पड़ दिखलाई देते हैं। कई वृक्षों के थड़ पर वलों को देखकर आयु मालूम कर सकते हैं। वृक्ष में, बीज में भी रस, मांस (गूदा) मगज (मज्जा) चाम (छाल) योनि (उत्पत्ति स्थान) मुख (आहार ग्रहण स्थान) नाभी (रस-चूसने की नली का स्थान) मस्तक (अग्रभाग) सब होते हैं। रींगण को टोपी, नारियल को जटा, गोभी पत्ते रूप फल, आलू फल रूप मूल, सोपारी पर वस्त्र जैसा पड़ (पड़दा), इलायची में सुगन्ध आदि अनेक प्रकार की विचित्रता दिखलाई देती हैं।

२५-आहार प्रणाली:—वनस्पति चौमासे में अच्छी तरह (खूब) आहार करती है। गरमी में मध्यम, और हेमन्त से कम करते करते वसन्त में कम से क आहार करती है।

इस विवेचन से वनस्पति में सचेतन दशा बराबर सिद्ध हो जाती है अतः वनस्पतिकाय सचेतन है—जीव है।

तथा सर जगदीशचन्द्र वसु ने वर्तमान विज्ञान द्वारा अनेक प्रयोग कर वनस्पति में जीव सिद्धि प्रत्यक्ष सिद्ध कर बतलाई है।

२—वायु (पवन) में जीव सिद्धिः—

जीवों के सिवा किसी अन्य पदार्थ में बिना किसी की प्रेरणा के (स्वतः) गति करने की शक्ति नहीं है क्योंकि मनुष्य, पशु, पक्षी आदि सचेतन दशा में ही स्वतः गति करते देखे जाते हैं। तथा वायु भी बिना किसी

की प्रेरणा के इधर-उधर (स्वत) गति करती है इसलिये सचतेन है—जीव है, यह सिद्ध हो जाता है। प्रभावक देव अथवा अजनादि के योग से जिस प्रकार मनुष्य अदृश्य रह सकता है वैसे ही वायु भी उसी प्रकारकी रूपपरिणति के योग से अदृश्य रह सकती है। तो भी स्पर्श आदि से इस की विद्यमानता जान सकते हैं।

३-अग्नि म जीव सिद्धि —

जैसे पवन के बिना मनुष्य, पशु, पक्षी, कीड़े, मकोड़े छोटे छोटे जीव जन्तु वगैरह जीवित नहीं रह सकते तथा जीवित रहने के लिये जिस जीव को जितने पवन की आवश्यकता होती है उससे कम या अधिक मिलने से वे जीवित नहीं रह सकते उसी प्रकार अग्नि भी वायु के बिना अथवा जीवित रहने की आवश्यकता से कम या अधिक वायु से जीवित नहीं रह सकती। अर्थात् मनुष्य आदि जीवों को अनुकूल पवन मिलने से ही जीवित रह सकते हैं इसी तरह अग्नि भी अनुकूल पवन मिलने से ही जीवित रह सकती है प्रतिकूल पवन मिलने से बुझ जाती है।

यदि किसी पेटी म से पवन निकाल लिया जाय अथवा पवन के निकाले बिना ही एक दीपक को उस पेटी म बन्द कर दिया जाय तो वह बुझ जाता है क्योंकि वहां उसे अपने जीवनको टिका रखनेके लिये जितना हवा की आवश्यकता है उससे उसको कम मिलती है इसी प्रकार यदि किसी दीपक को पवन का सपाटा

लगता है तो वह बुझ जाता है क्योंकि उसे जीवन को टिका रखने के लिये जितनी हवा की आवश्यता थी उससे अधिक मिली।

इसीप्रकार किसी एक बन्द कमरे में बहुत मनुष्यों को भर देने से काफी हवा न मिलने के कारण से वे मर जाते हैं और जीवन को टिका रखने के लिये जितने पवन की आवश्यकता होती है उससे अधिक पवन से कितनों की जीवन ज्योति बुझ भी जाती है।

अतः अन्य जन्तुओं के समान ही अग्नि के जीवनका आधार पवन है इसलिये यह सचेतन है—जीव है।

खद्योत, पतंगों आदि जीवों में प्रकाश तथा मनुष्य के शरीर में सहज गरमी जीव प्रयोग के बिना जिस प्रकार असंभव है उसी प्रकार अग्नि का प्रकाश तथा सहज ऊष्णता जीव प्रयोग से ही साध्य है।

अग्नि को लकड़ी आदि खुराक तथा दीपक को तेल आदि खुराक मिलने से मनुष्य आदि के शरीर के समान बढ़ते हैं।

अनुकूल पवन से बढ़ती है प्रतिकूल पवन से मृत्यु प्राप्त करती है। घर्षण (रगड़) आदि से जन्म लेती है।

इत्यादि स्थितियाँ इसे (अग्नि को) सचेतन सिद्ध करती हैं अतः अग्नि सचेतन है-जीव है।

४—पानीमें जीव सिद्धि —

जैसे हाथीका गर्भ प्रथम गर्भ के अन्दर प्रवाही [कलल] रूपमें होता है। अण्डे में पक्षी प्रथम पानी रूप में होता है तो भी इनमें हाथी और पक्षी का जीव है वैसे ही पानी प्रवाही होते हुए भी सचेतन है। मूत्र, दूध अचेतन हैं वैसे हरेक पानी अचेतन नहीं होता। मूत्र दूध आदि का प्रवाहीपन भी जीव के प्रयोग बिना नहीं होता।

हाथी का कलल तथा अण्ड में प्रवाही पदार्थ जैसे शस्त्र से अनुपहत सजीव द्रव (प्रवाही) रूप द्रव्य हैं वैसे पानी भी है इस लिये पानी भी सचेतन है।

बिना छाने पानी के एक बिन्दु में सूक्ष्मदर्शक यन्त्र द्वारा ३६४५० हिलते चलते त्रस जीव दिखलाई देते हैं। इसका चित्र गाथा नं० १५ के विवेचन में दिया है। परन्तु पानी स्वयं ही स्थावर जीव रूप है इसीका नाम अपुकाय है। पानी में पूरे वगैरह जो दिखलाई पड़ते हैं उन्हें अपकाय जीव नहीं समझना चाहिये। वे द्वीन्द्रिय आदि जीव हैं। पानी को अच्छी प्रकार से छानने से उसमें पूरे वगैरह द्वीन्द्रिय आदि जीव नहीं रहते और तीन उफानों से बराबर (पानी को) उबालने से अपुकाय—पानी जीव च्यव जाते हैं। मात्र अचित्त पानी रह जाता है यह गर्मियों में ५ जाड़ों में ४ तथा चौमासे में ३ प्रहर तक अचित्त रहता है तदुपरांत सचित्त हो जाता है। यदि सचित्त होने से पहले इसमें चूना डाल दिया जावे तो दूसरे २४ प्रहर तक यह पानी अचित्त रह सकता है। ऐसा करने से लम्बे समय तक जीव दया का पालन किया जा सकता है। मुनि महाराजों आदि को निर्जीव-अचित्त आहार पानी लेने का नियम होता है। व्रतधारी अथवा मुनि महाराज सचित्त पानी का स्पर्श भी नहीं कर सकते।

बादलों के संयोग मिलते ही पानी की उत्पत्ति होती है इसका छेदन भेदन भी होता है। पानी शरीर से ठण्डा होता है किन्तु किसी समय उसमें उष्ण स्पर्श भी होता है। जिस समय बाहर के वातावरण मे ठण्ड होती है उस समय मनुष्य के शरीर में गरमी प्रतीत होती है वैसे ही पानी जाड़ों में ऊपर से ठण्डा होते हुए भी अन्दर से गरम होता है। जाड़ों में पश्चिम दिशा की तरफ खड़े होकर देखें तो उसमें से भाप का समूह ऊँचे चढ़ता दिखलाई पड़ता है। जाड़ा होते हुए भी भाप निकलना शरीर की उष्णता बिना संभव नहीं है।

पानी श्वासोश्वास भी लेता है क्योंकि उसे ताज़ा और स्वच्छ वायु न मिलने से सड़कर दुर्गन्ध युक्त हो जाता है और स्वच्छ हवा मिलने से निर्मल और स्वच्छ रहता है।

ये उपर्युक्त सब लक्षण सचेतन दशा के द्योतक हैं अतः इन प्रमाणों से पानी भी सचेतन है—जीव है। यह सिद्ध होता है।

५-पृथ्वीकाय में जीव सिद्धिः—

यद्यपि पृथ्वी में वनस्पति आदि के समान चैतन्य सरलता पूर्वक समझना कठिन है तो भी भलीभांति विचार करने पर इस में भी चैतन्य मालूम पड़ेगा। जैसे मादक द्रव्य पीने से मनुष्य मूर्छित दशामें पड़ा रहता है तो भी उसमें चैतन्य रहता है वैसे ही पृथ्वीकायमें भी चैतन्य होता है। जिस प्रकार मनुष्य के शरीर में अवयव तथा मसे वगैरह बढ़ते हैं उसी प्रकार पृथ्वी शरीर मे भी वृद्धि होती है। लवण, परवाल, पत्थर आदि के

समान अकुर उत्पन्न होकर व बढते रहते हैं। पृथ्वी मे से जो कोई वस्तुएं निकलती हैं व प्रत्येक सचेतन होती हैं। अमुक समय बाद अचेतन हो जाती है और अपनी सजातीय वस्तुओं मे से व बढती है। पत्थर का कोयला आदि भी पहले तो वनस्पतिकायका शरीर ही होता है परन्तु काल क्रमसे परिणाम पाकर पृथ्वी के सम्बन्ध से व पृथ्वीकाय रूप बन जाता है।

परवाल, पत्थर आदि कठिन होते हुए भी मनुष्य की हड्डियो के समान सचेतन है। छेदन, भेदन, फेंकना, भोग गध, स्पर्श इन सब का आश्रय रूप यह द्रव्य है। ये सब बातें जीव प्रयोग बिना सम्भव नहा हो सकतीं।

पर्वतों मे पत्थर आदि बढते हुए प्रत्यक्ष देखे जाते हैं अत वृद्धि होना सचेतन दशा बिना सभव नहीं हो सकता।

तथा पारा खानो मे से निकलता है इसलिये यह भी पृथ्वीकाय है। प्राचीन काल मे इसे निकालने के लिये ऐसी विधि थी कि एक मनुष्य सवारी कन्या को घोड़े पर बिठला कर उसका मुह पारे के कुए मे दिखला कर भाग जाता था तब पारा मैथुन सज्ञा से बाहर उछलकर उस कुए के आस पास फैल जाता था। पारे की यह मैथुन सज्ञा पारा सचेतन होनेकी द्योतक है। इत्यादि प्रमाणों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि पृथ्वी भी सचेतन है इस लिये जीव है।

जिस प्रकार गूगा, अधा मनुष्य दुखी होते हुए भी दुख व्यक्त नहीं कर सकता उसी प्रकार ये जीव दुखी होते हुए भी, अपना दुख व्यक्त करने में असमर्थ है। अर्थात दुख व्यक्त नहीं कर सकते।

॥ समाप्त ॥

जीवविचार पद्यानुवाद

कर्त्ता
पं० हीरालालजी दूगड़

[हरिगीत छंद]

मंगलाचरण

तीन भुवन मे दीपक सम, श्री वीर को वन्दनकरी।
जीव अबुध बोध हेतु जिम, पूर्व सूरि वर्णन करी॥
संक्षेप से स्वरूप कहूं, तिम जीव का उत्साह भरी।
हे भव्य जीवो! तुम सुनो, मन वचन काया थिर करी॥ १॥

दो भेद हैं मुख्य जीव के, ये मुक्त संसारी तथा।
संसारियों के कर्म युत, विभाग त्रस स्थावर तथा॥
पृथ्वी जल अगनि पवन अरु, वनस्पतिकाय बखानिये।
ये पांच भेद स्थिर रहें, सो स्थावरों के जानिये॥ २॥

परवाल पारा मणि फटिक, सब जाति पत्थर मृतिका।
ईंगूर हरताल सुरमा, रतन स्वर्णादि धातुआ॥
मैंनसिल खड़िया हरमची, पलेवक अभरक क्षार हैं।
नमक अरनेटक फटकरो, अनेक पृथ्वी प्रकार हैं॥ ३॥

हिम ओस अरु ओले तथा, जल पृथिवी आकाश का।
हरी वनस्पति पर जलकण, फूट कर निकला हुआ॥
जलके कण सूक्ष्म नन्हें, जो बादलों से गिरत हैं।
घनोदधि कुहरादिक तथा, भेद अप्काय अनेक हैं॥ ४॥

अगार तड़ित ज्वाला तथा, पड़ते नभ उल्कापात जो।
तारों व चिंगारियों तुल्य, ज्वलन कण अन्तरीक्ष जो॥
रगड़ पत्थर बांसादि से, होती प्रगट पावक हैं।
हों वह्नि कण जो राख में, काया अग्नि के भेद हैं॥ ५॥

नीचे बहती हुई हवा जो धूलि मे रेखा करे।
गुञ्जारव युत बहता अनिल समीरण मन्द जो सचरे॥
आंधी वृत्ताकार तथा ऊँचा उड़त जो पवन हैं।
घणवात व तनवात आदि, अनेक वायु के भेद हैं॥ ६॥

प्रत्येक साधारण तथा, वनस्पति के दो भेद हैं।
जीव अनन्त तनु एक हो कहते जिसे साधारण हैं॥
गाजर अङ्कुरे कोपलें सब कन्द अरु नागर मुथा।
बासी अन्न मे होत पड़ती पाँच वरण फुल्लो तथा॥ ७॥

उत्पन्न जो वर्षा ऋतु मे वनस्पति छत्राकार तथा।
व सकल सनादि के पत्ते, हों गुप्त नस जिनकी यथा॥
कर्चूरक हल्दी और अद्रक, हरे तीन प्रकार के।
जिनमे बने न बीज फल कोमल सभी प्रकार के॥ ८॥

थेग बथुआ अरु पालखी, सेनार मन धारण करो।
ये भी वनस्पतियाँ सभी, स्वरूप निन का मन धरो॥
काट कर बो देनेपर भी, जाया करती जो उग हैं।
गिलोय गुगुल थोहर तथा कुँआर भेद अनेक हैं॥ ९॥

वेल-अमृत व शतावरी, लसन शकरकन्द प्याज हैं।
इत्यादिक भेद अनेक ये काय अनन्त के होत हैं॥
निगोद अनन्तकाय तथा, साधारण एक मानना।
लक्षण कहा है सूत्र में, विशेष रूप से जानना॥ १०॥

तुम जान लेना बन्धुओ, ऐसी वनस्पतियां अहा।
उग जाय छेदी हों पुनः गुप्त जिनकी गाठें हों ॥
प्रछन्न हों जोड़ जिनके, दें न दिखलाई सर्वथा।
जा की नसें गुप्त हों बुध जन समझ लेना तथा ॥ ११ ॥
जो टूटने पर भाग सम, ततक्षण होते सर्वदा।
भंग समय तन्तुओं विना, काया जिनकी होय तदा ॥
लक्षण तनु साधारण के, निश्चय आप ये जानिये।
होय लक्षण विपरीत तो प्रत्येक का तनु मानिये ॥ १२ ॥
तनु एक मे जीव एक हो, होता वही प्रत्येक है।
फल फूल छाल काठ पत्ते जड बीज सातों भेद है ॥
इनके तनु एक एक मे जीव होता इक एक है।
तथापि समूचे वृक्ष मे, होता जुदा इक जीव है ॥ १३ ॥
प्रत्येक वनस्पति विन स्थावर, जीव धरादि पांच हैं।
अन्तर्मुहूर्तायु इन की, सूक्ष्म तथा अदृश्य हैं ॥
उदक शस्त्र पावकादि से, संहार इन का है नहीं।
निश्चय चतुदश राज मे, सब व्याप्त ये सर्वत्र हैं ॥ १४ ॥
भूनाग पूरा कोड़ियां, सलहप उत्पन्न पेट का।
बासी अन्न में लालयक, उत्पन्न मातृवाहिका ॥
जोंक शंख सीप नारुवा, चन्दनक कीड़ा काठका।
फोड़ों ववासीर के कृमि, इत्यादि द्वीन्द्रिय जीव है ॥ १५ ॥
जूं लट खटमल कानखजूरा चर्मयूका कुंथुआ।
गोपालिका अरु सुरसली, कीड़ी उदेही घृतेलिका ॥
अनाजघुन गाय-इन्द्रकी, गोकीट कीड़े जातियाँ।
गोबर-जन्तु कोट-विष्टे, गर्दभक जीव त्रीन्द्रियाँ ॥ १६ ॥

ढिकुन घुडसाल उत्पन्न भारा बिच्छू पसारिका।
घडमाकडी मच्छर टिड्डी, डास मकडी व भ्रमरिका॥
पतग पिस्सु खद्योत मक्खी झींगुर तितली मधुमक्खी।
इत्यादि इन्द्रियाँ चार वाले जीव भेद अनेक हैं॥ १७॥

नारक व तिर्यंच मानव, देव जीव पचेन्द्रि हैं।
पृथ्वी सप्त के भेद से, नारक सप्त प्रकार हैं॥
रत्न शर्कर अरु बालुका, पङ्क धम तम तमस्तमा।
ये नाम नारक भूमियों के, जान लेना हे सखा॥ १८॥

हैं तिर्यंच पचेन्द्रिय त्रिविध जल थल खेचर तथा।
भूमि पर स्थलचर रहते, रहते उदक में जलचरा॥
खेचर पक्षी का नाम है सके उड जो आकाश में।
घडियाल कछुआ सूस मछली मगर आदि जलचारी में॥ १९॥

गौ आदि चार पगे तथा, प्राणी चतुष्पद मानना।
छाती बल जो चले सर्पादि उरपरिसर्प पिछानना॥
तथा भुजपरिसर्प चलते हाथों न्योलादि जानना।
तीन प्रकार के जन्तु ये तिर्यंच थलचर मानना॥ २०॥

पख जिनके रोम निर्मित, तोता हस मैनादि जो।
चम पखा वाले पक्षी, चमगादडादि प्रगट जो॥
रोमज पक्षी चरमज पक्षी क्रमश उनको मानना।
ये भेद दो निरयात हैं, मनुष्य लोक में जानना॥ २१॥

पख निरतर बन्द रहें इनके वह समुद्गक हैं।
पर समय खुले पख रहें निसके पक्षी वह वितत हैं।

दो भेद ये विहंगम के नरलोक से बाहर सदा।
खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच, कुल भेद चार समझ भला ॥२२॥

खेचर थलचर अरु जलचर तिर्यंच पंचेन्द्रिय सदा।
भेद इन के दो दो गिनो, गर्भज संमूर्छिम तदा ॥
अकर्म कर्म भूमि जनमा अन्तरद्वीप जनमा तथा।
ये तीन भेद मनुष्य के, नरलोक उपजत सर्वदा ॥२३॥

भवनपति व्यंतर ज्योतिषी, वैमानिक सदा मानना।
ये भेद देव निकाय के, चार प्रकार विचारना ॥
प्रथम दश द्वितीय अड तृतीय पंचविध जानना।
वैमानिक द्विविध सब ये प्रभेद इनके पिछानना ॥२४॥

किये जिन ने सब तरह के, कर्म क्षय मुक्त जीव हैं।
तीर्थ सिद्ध अतीर्थ सिद्ध, आदि पंद्रह भेद हैं ॥
स्थान इनका सिद्ध शिला पर, निश्चय से निर्भेद सदा।
वर्णन चुका हूं भेद कर, संक्षेप भलीभांति सदा ॥२५॥

अब मैं करूंगा क्रमशः वर्णन जीव के पंच द्वार का।
तनु की लम्बाई और आयु जघन्य उत्कृष्ट सब का ॥
प्रमाण स्वकायस्थिति तथा प्राण एवं योनियां।
जिस जीव के होते जितने शास्त्र लेकर साखियाँ ॥२६॥

भाग जितना होता तथा असंख्यातवाँ अंगुल का।
गात उतना होता लम्बा, जीव सब एकेन्द्रिय का ॥
शरीर प्रत्येक वनस्पति परन्तु इतना जानिये ॥
योजन सहस्र से अधिक उसकी लम्बाई मानिये ॥२७॥

द्वीन्द्रिय जीवों का शरीर बारह योजन है कहा ।
त्रीन्द्रिय गात्र जीव का उत्कृष्ट कोस तीन कहा ॥
वपु जीव चतुरिन्द्रिय का, योजन वर्णन एक किया।
तनु मान विकलेन्द्रिय का संक्षेप से है कह दिया ॥२८॥

नारक मही सातवीं का, पञ्चशत धनुष्य शरीर है ।
कलेवर छठे नारक का, ढाइशत धनुष्य मान है ॥
सवाशत धनु प्रमाण तनु, लम्बाई नारक पाँचवी ।
नारक चतुर्थ का धनु साढे बासठ देहमान है ॥ २९ ॥

तनु मान नरके तीसरो धनुष्य सवा इकतीस का ।
साढ़े पन्द्रह धनु तथा बारह अंगुल दूजी का ॥
वपुमान पहली नारकी छः अंगुल पौने आठ धनू ।
कम समझ आधोआध धनु नरक सबसे प्रथम वपू ॥३०॥

शरीर उरपरिसर्प गर्भज सहस्र योजन जानना ।
जलचर सम्मूर्छिम गर्भज इतना तनु ही मानना ॥
प्रमाण बाठ खग गर्भज धनु पृथक्त्व जानना ।
शरीर गर्भज भुजचर का कोस पृथक्त्व मानना ॥ ३१ ॥

खग भुजग सम्मूर्छिम तनु, तिर्यंच पंचेन्द्रिय कहा
लम्बाई वर्णन शास्त्र में है धनुष पृथक्त्व अहा ॥
है योजन पृथक्त्व तनु प्रमाण उरपरिसर्प का ।
मान सम्मूर्छिम चतुष्पद कोस तनु पृथक्त्व का ॥ ३२ ॥

गर्भज चतुष्पद का तनु निश्चय छः कोस प्रमाण है ।
गर्भज मनुष्य का तनु, उत्कृष्ट कोस त्रय मान है ॥

भवनपति से आरम्भ कर ईशान का जहाँ अन्त है ।
तनु देवता के वहां तलक सात हाथ प्रमाण हैं ॥ ३३ ॥
विमान तृतीय चतुर्थ सुर का तनु षट हाथ का ।
पंचम तथा षष्ट स्वर्ग, तनु हाथ पंच प्रमाण का ॥
कर चार सप्तम अष्टम अरु कर तीन चरम चार को ।
कर दो नवग्रैवेयक तनु अनुत्तर सुर कर एक का ॥ ३४ ॥
आयु पृथ्वीकाय का वर्ष सहस्र बाईस का ।
सप्त सहस्र अप्काय का दिन रात तीन ज्वलन का ॥
तीन सहस्र वर्ष प्रमाण आयुष्य तथा वायु का ।
दस सहस्र वर्ष आयुष्य उत्कृष्ट तरु प्रत्येक का ॥ ३५ ॥
द्वीन्द्रिय जीव आयु उत्कृष्ट वर्ष बारह जानिये ।
आयुष्य जन्तु त्रीन्द्रिय का दिन उगनपचास मानिये ॥
आयु चतुरिन्द्रिय जीव का छ मास का ही वखानिये ।
विकलेन्द्रियों की निश्चय उत्कृष्ट आयुष धारिये ॥ ३६ ॥
तेतीस सागरोपम आयु उत्कृष्ट नारक देव का ।
आयुष्य इनका तो जघन्य है दस हजार वर्ष का ॥
आयु गर्भज मनुष्य अरु चतुष्पद गर्भज प्राणी का ।
उत्कृष्ट त्रि पल्योपम व जघन्य अन्तर्मुहूर्त का ॥ ३७ ॥
गर्भज संमूर्छिम जलचर, गर्भज उरपरिसर्प जो ।
तिर्यंच भुजपरिसर्प सर्व स्थलचर पंचेन्द्रिय जो ॥
उत्कृष्ट पूर्व क्रोड़ वर्ष आयुष्य तीनों की तथा ।
भाग असंख्यातवां पल्योपम का पक्षी आयुष तथा ॥३८॥

सूक्ष्म सर्व साधारण तथा सम्मूर्छिम मनुष का ।
जघन्य तथा उत्कृष्ट से आयु अन्तमुहूर्त का ॥
अवगाहन अरु आयु किये द्वार वर्णन संक्षेप से ।
जो फिर इस से विशेष है, जानना शास्त्र से ॥ ३६ ॥

निज काय में उपजें मर, जीव निरंतर जहाँ तलक ।
स्वकाय स्थिति द्वार को सुनना यह मैं तय तलक ॥
काया अनन्त की अनन्ती और सकल एकेन्द्रिया ।
असंख्य हैं उत्सर्पिणी अवसर्पिणी की स्थितियाँ ॥ ४० ॥

स्वकाय स्थिति वर्ष संख्याता विकलेन्द्रिय जीव की ।
तिर्यंच पचेन्द्रिय तथा मनुष्य भव सात आठ की ॥
नारक तथा देव निजकाय में न कभी उत्पन्न हों ।
स्वकाय स्थिति तब तलक उनकी जब तलक स्वायु रहो ॥ ४१ ॥

त्वक रसन, घ्राण, नाक चक्षु पाँचों इन्द्रियाँ प्राण ये ।
हैं मन वचन काया तथा बल प्राण तीनों जानिये ॥
आयुष्य श्वासोश्वास तथा जीवन के आधार हैं ।
सब मिलकर संख्या जिनकी होत दस द्रव्य प्राण हैं ॥४२॥

उपरोक्त दश प्राण माँहि हैं चार एकेन्द्रिय को ।
छः सप्त अष्ट प्राण क्रमश होवे विकलेन्द्रिय को ॥
असंज्ञी पचेन्द्रिय को मन बल बिन होते नव हैं ।
प्राण दश होते सन्नी पचेन्द्रिय सभी माँहि हैं ॥ ४३ ॥

प्राणों से वियोग होना यही जीव की मृत्यु कही ।
धर्म प्राप्त किये बिना या जीव सहता दुःख अहो ॥

यह वार अनन्त पा चुका है घोर कष्ट मरण अहो।
इस भयंकर संसार सागर अपारमे निश्चय अहो ॥ ४४ ॥

उत्पन्न होय जीव जहां वे स्थान हैं सब योनिया ।
काय पृथ्वी जीव की है, सब सात लाख योनियाँ ॥
जीव जलकाया की तथा, योनियां सात लाख सभी ।
काय अग्नि जीव योनियां, लाख सप्त समस्त भी ॥ ४५ ॥

काया समीर स्थावर को लाख सत योनियां कही ।
लाख दस हैं कुल योनियाँ, प्रत्येक तरुओं की सही ॥
चतुर्दश लाख योनियां है अनन्तकाय की कही ।
द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय योनि लक्ष दो दो कही ॥४६॥

चार लक्ष योनि देव को. जीव नरक की चार लक्ष ।
तथा तिर्यंच पंचेन्द्रिय की योनि है चार लक्ष ॥
प्रसिद्ध हैं नर जन्म की ये लाख चौदह योनियां ।
लक्ष चउरासी तथा है, मिलकर सभी ये योनियां ॥ ४७ ॥

नहीं तनु सिद्ध के जिस से नहीं कर्म अरु आयु नहीं ।
प्राण द्रव्य भी सर्वथा नहीं, योनियां भी हैं नहीं ॥
सादि अनन्त उनकी स्थिति, जिनेन्द्र आगम मे कही ।
एक सिद्ध आश्रित स्थिति मैं ने यहां वर्णन कही ॥ ४८ ॥

बिना अन्त और आदि के समस्त इस अरे लोक मे ।
योनियों द्वारा भयंकर, सागर जगत गम्भीर मे ॥
जिनवर प्रभु के वचन को, हे जीव । विन पाये हुए ।
चिरकाल भ्रमण है किया, अरु करेंगे भटके हुए ॥ ४९ ॥

मनुष्य जन्म समकित तथा जो कि परम दुर्लभ कहे।
हे मनुष्य । पाकर इनको, श्री शांति सूरि राज कहे॥
शांति तथा ज्ञानादि लक्ष्मी युक्त पूज्यों ने जो कहा।
इस धर्म मे तत्पर रहो कर सफल जीवन तुम महा॥५०॥

अल्प मति वाले जीव के, बोध हेतु ही निश्चय से।
गम्भीर श्रुत रूपी महासागर से संक्षेप से॥
उपकार बुद्धि से किया उद्धार जीवविचार का।
हे भव्य जीवो । जीव शास्त्र यह कहाता सार का॥ ५१॥

पद्यानुवादक की प्रशस्ति

पचनदी पंजाब देश में। गुजरांवाला नगर मझार।
बीसा ओसवाल कुल भूषण, जन्मे दूगड गोत्र मझार॥ १॥
वैभववन्त अति न्यायवन्ता, पुण्यवन्त सद्गुणी दातार।
श्रीगुरु भाषित पाले षट्कर्म, जिन धर्मी श्रावक सुखकार॥ २॥
चौधरी बापु मथुरादास, नन्दन दीनानाथ उदार।
वर्त्तमान विराजे आगरा, ज्योतिष विद्या जाननहार॥ ३॥
तस सुत हीरालाल ने, मद्रास नगर मझार।
रच्यो पद्यानुवाद यह, हिन्दी जीवविचार॥ ४॥
इन्द्रिय गगन व्योम कर वर्षे, विक्रम कियो बृहस्पतिवार।
माघ सुदि पंचमी शुभ दिवसे, पूर्ण कविता हर्ष अपार॥ ५॥

शुद्धि पत्रक

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२	१६	त्रेइ दिय	त्रेइ् दिय
४	९	गब्भया	गब्भया
४	१३	गब्भया	गब्भया
१२	२१	कांय	काय
१३	६	जोवो	जीवों
१७	६	वन्द्रकांत	चन्द्रकान्त
२२	१४	पानो	पानी
२२	१६	ानते	जानते
२६	१	वत्तेया	पत्तेया
२८	६	व्व	सत्त्व
३७	२०	सुक्ष्म	सूक्ष्म
३८	५	वृक्ष	वृक्ष
३९	१	वणन	वर्णन
४१	१४	श्वासोश्वात	श्वासोश्वास
४२	४	शख	शख
४४	४	खरात्र	खराव
४६	२	हुत	बहुत
४६	७	लख	लीख
५१	५	कार्मो	कर्मो
५६	३	कम के	कर्म के

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
६०	४	मनु'ष्य	मनुष्य
६३	१६	गभज	गर्भज
६४	११	वाद	व्राद
६५	१	काय	कार्य
६६	१८	अकमभूमियों	अकर्म भूमियों
६७	६	अशुचिस्थान	अशु-चिस्थान
७३	६	सर्वाथ सिद्धि	सर्वार्थ सिद्धि
७३	१८	व्रचन	वचन
७५	६	ऊचाई	ऊंचाई
७७	५	कल्पोंपपन्न	कल्पोपपन्न
७७	१६	अप्रथम	प्रथम
७८	६	हैं	है
७८	२०	वैभानिक	वैमानिक
८६	५	गुणवड़ा	गुणावड़ा
८७	८	उच्चित्त	उच्चत्त
८७	११	लम्वाई	लम्बाई
८८	१८	पृथिव्वाम्	पृथिव्याम्
९१	१८	वनुह	वणुह
९२	१३	उकोस	उक्कोस

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
९३	८	चतुप्पद	चतुष्पद	१३५	११	द्रय	रसेन्द्रिय
९४	७	रयणाभा	रयणीओ	१ ६	११	पल्यापम	पल्योपम
९६	३	गर्भेन्द्रिय	गर्भेन्द्रिय	१३६	६	भु रसप	भुजपरिस
९६	५	आउत्त	आउस्स	१३६	१४	असख्यत्वा	असंख्यात्वा
९८	१४	नुप्यो	मनुष्या	१३६	१	सतनाभद्र	सन्ताभद्र
९९	६	तिन्नो	तिन्नि	१ ६	१४	मनिशाल	छनिशाल
१००	२१	ऽसख्य	ऽसख्य	१४४	३	चन्द्रिय	पंचेन्द्रिय
१०५	६	अनम्त	अनन्त	१४४	१६	चउरिंदिय	चउरिंद्रिय
१०८	२	नहीं	नहीं	१४७	१०	पत्र	पत्त
११२	१६	धर्म	धर्मं	१४८	०	समुच्छिम	समुच्छिम
११५	१७	जाणिण	जोणाण	१४६	१५	विगलदींय	विगलेंदि
१२२	५	गभीर	गम्भीर	१४४	१४	पाह	पाहु
१३५	१०	ए	कुए	१५०	२	हाता	हाता

लेखक द्वारा सपादित प्राप्य पुस्तक

१—आत्मज्ञान प्रकाशिका (विनय केसर सूरिजी कृत)
हिन्दी अनुवाद मूल्य ।॥)

२—जीवविचार - प्रस्तुत ग्रन्थ आपके करकमलों में है अतएव अधिक परिचय देना व्यर्थ है मूल्य १॥)

३—इसी जीवविचार मे प्रकाशित सप्त नरक चित्र २२'×१४' आर्ट बोर्डपर प्रिंट प्रेसमे मढाकर रखने योग्य मूल्य १॥)

प्राप्ति स्थान प० हीरालालजी दूगड़ १२५ नायनी अप्पा नायक स्ट्रीट मद्रास।

प्रथम से ग्राहक महानुभावों की नामावली

पुस्तक	नाम	शहर
३०१	श्री ज्ञानखाता	मद्रास
२०१	शा० छगनराजजी चुन्नीलालजी	”
२०१	शा० रतनचन्दजी कपूरचन्दजी	”
२०१	शा० अमरचन्दजी सोभाचन्दजी	”
१०१	शा० हरखचन्दजी मिश्रीमलजी	”
१०१	शा० मूलचन्दजी आसुरामजी	”
१०१	शा० हंसराजजी अभयचन्दजी	”
१०१	शा० रिखबदासजी माधाजी	”
१०१	शा० रिखबदासजी भमूतमलजी	”
१०१	शा० रिखबदासजी भूरमलजी	”
१०१	शा० जावंत राजजी रिखवाजी	”
१०१	शा० मोतीलालजी केसरजी	”
७५	शा० भेरुंबक्षजी कानमलजी	”
५१	शा० जेठमलजी गेनमलजी	”
५१	शा० रिखबदासजी छगनराजजी	”
५१	शा० जोधाजी भलेचन्दजी	”
५१	शा० गणेशमलजी आदाजी	”
५१	शा० मूलचन्दजी मिट्ठालालजी	”
५१	शा० छगनराजजी सुमेरमलजी	”
५१	शा० जोधाजी मणिरामजी	”

पुस्तक	नाम	शहर
५१	शा गुलाबचन्दजी मोहनलालजी	मद्रास
५१	शा० मोतीचन्दजी गणेशमलजी	"
५१	शा० भूरमलजी रिखबदासजी	"
५८	शा० जगरूपजी मन्नालालजी	"
५१	शा० रणछोडमलजी रामचन्दजी	"
५१	शा० मगाजी सिरेमलजी	"
५८	शा० त्रिलोकचन्दजी रिखबदासजी	"
५१	शा० त्रिलोकचन्दजी बालाजी	"
५८	शा० मूलचन्दजी देवीचन्दजी	"
५०	शा० धन्नालालजी मन्नालालजी	"
४१	शा० फौजमलजी मूलचंदजी	"
३५	शा० भूरमलजी भभूतमलजी	"
३१	शा० भीमराजजी गोडीदासजी	"
३१	शा० मोनमलजी हस्तिमलजी	"
२५	शा० गोमराजजी पण्ड सस	"
२५	शा० नथमलजी मागरमलजी	"
२५	शा० फूलचन्दजी सुमेरमलजी	"
२५	शा० भामराजजी ऋषभदासजी	"
२५	शा० रिखबदासजी हुकमाजी	"
२८	शा० धन्नाजी भभूतमलजी	"
२१	शा० मगाजी मोनमलजी	"

पुस्तक	नाम	शहर
२१	शा० एकसाधर्मी भाई	मद्रास
११	शा० छोगामलजी किसना जी	,,
११	शा० सुखराजजी पीराजी	,,
१०	शा० घन्नाजी पुखराजजी सेठिया	,,
१०	शा० लालचन्दजी भीमराजजी	,,
१०	हिन्द बोतल स्टोर	
१०	शा० पी० एच गांधी	,,
१०	शा० पोरवाल एंड सन्स	,,
५	शा० चांदमलजी कोठारी	,,
५	शा० घोसूलालजी	,,
५	शा० नेनमलजी कपूरजी	,,
५	शा० रूपचन्दजी	,,
१००	शा० मुन्नीलालजी चिमनाजी कांकरिया	ओटवाल
५०	श्री जैन श्वेताम्बर तीर्थ पेढी	राजगीर
२५	श्री वर्द्धमान जैन विद्यालय	ओसिया
२५	शा० सिरेमलजी जुगराजजी	राजबन्दर
२१	शा० हजारीमलजी आम्बाजी	मेंगलवा
११	शा० धमचन्दजी जीवाजी	चोराऊ
११	शा० हजारीमलजी जोभाजी	जीवाना
३३१४	कुल जोड़	

(नोट) मूल्य १) प्रति पुस्तक आगाऊ ग्राहकों से प्राप्त